प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन
श्रीकृष्ण दर्शन

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

श्रीकृष्ण दर्शन

निवेदन

जितना मनुष्य जन्म दुर्लभ है उससे भी ज्यादा मनुष्यता दुर्लभ है और उससे भी ज्यादा मानुषी शरीर से, मन से, बुद्धि से पार परमात्मदेव का साक्षात्कार दुर्लभ है। श्रीकृष्ण के अवतार से यह परम दुर्लभ कार्य सहज सुलभ हो पाया। राजसी वातावरण में, युद्ध के मैदान में किंकर्त्तव्यमूढ़ अवस्था में पड़ा अर्जुन आत्मज्ञान पाकर - 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा' - अपने आत्म-वैभव को पाकर सारे कर्मबन्धनों से छूट गया। जीते जी मुक्ति का ऐसा दुर्लभ अनुभव कर पाया।

श्रीकृष्ण को अगर मानुषी दृष्टि से देखा जाये तो वे आदर्श पुरूष थे। उनका उद्देश्य था मनुष्यत्व का आदर्श उपस्थित करना।

मनुष्य व्यावहारिक मोह-ममता से ग्रस्त न होकर, धर्मानुष्ठान करता हुआ दुर्लभ ऐसे आत्मबोध को पा ले, इस हेतु मनुष्य में शौर्य, वीर्य, प्राणबल की आवश्यकता है। इस छोटे से ग्रंथ में संग्रहित प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के अनुभवसिद्ध प्रयोग और उपदेशों से हमारी प्राणशक्ति, जीवनशक्ति, मनःशक्ति और बुद्धि का विकास करके हम इहलोक और परलोक में ऊँचे शिखरों को सर कर सकते हैं। और तीव्र विवेक-वैराग्यसम्पन्न जिज्ञासु लोकातीत, देशातीत, कालातीत अपना आत्म-साक्षात्कार का दुर्लभ अनुभव पाने में अग्रसर हो सकता है।

आज हम सब भी रजो-तमोगुणी वातावरण में पनपे हैं और घसीटे जा रहे हैं। भीतर विकारों-आकांक्षाओं का युद्ध मचा है। इस समय श्रीकृष्ण की लीला, चरित्र, ज्ञानोपदेश, प्राणोपासना, जीवनयोग और विभिन्न प्रसंगों पर अनुभव-प्रकाश डालते हुए प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू ने आज के मानव की आवश्यकता अनुसार पथ-प्रदर्शन किया है।

संतों के वचनों को लिपिबद्ध करके सुज्ञ पाठकों के करकमलों में अर्पित करते हैं।

श्री योग वेदान्त समिति
अमदावाद आश्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीकृष्ण-दर्शन

भगवान श्रीकृष्ण ने जेल में प्रकट होना पसंद किया। रोहिणी नक्षत्र, श्रावण के कृष्णपक्ष की अष्टमी, अन्धकारमय रात्रि और वह भी मध्यरात्रि। जो नित्य, मुक्त, प्रकाशमय है वह अन्धकार की रात्रि पसंद कर लेता है। जो घट-घटवासी है वह कारावास को पसंद कर लेता है। जो नित्य है, निरंजन है, अगम है, अगोचर है वह साकार नन्हा-मुन्ना रूप स्वीकार कर लेता है।

भगवान की यह गरिमा है, महिमा है कि वे बन्धन में पड़े हुए को मुक्त कर दें, बिछुड़े हुए को मिला दें, अज्ञानी को ज्ञान दे दें। शोकातुरों का शोक निवृत्त करने के लिए बँसी बजानी पड़े या बछड़े की पूँछ पकड़नी पड़े फिर भी उनको कोई बाधा नहीं आती। भगवान को कोई भी काम छोटा नहीं लगता। जिसे कोई सेवाकार्य छोटा न लगे वही तो वास्तव में बड़ा है।

श्रीकृष्ण के जीवन में ऐसे-ऐसे उतार और चढ़ाव आते हैं कि जिनको समझने से हमारे नर जीवन में नारायण का प्रकाश हो जाय।

श्रीकृष्ण जब करीब 70 साल के थे तब घोर आंगिरस ऋषि के आश्रम में गये। तेरह वर्ष उन्होंने एकान्त में उपनिषदों का अभ्यास किया। छान्दोग्य उपनिषद (3.17.6) में यह कथा आती है।

श्रीकृष्ण के जीवन में ज्ञान भी अव्वल नंबर का था। युद्ध के मैदान में उन्होंने भगवद् ज्ञान बरसाया है। उनके जीवन में उतार-चढ़ाव भी कैसे आये !

भगवान के जीवन का एक दृश्य और देखो। कालयवन की सारी संपत्ति हाथियों, बैलगाड़ियों, भैंसों, घोड़ों और गधों पर लादकर यदुवंशी द्वारका जा रहे थे। श्रीकृष्ण ने सोचा कि

यह संपत्ति हमारे घर में जायेगी तो कुछ न कुछ हानि पहुँचाएगी। हमारे कुल के लोगों की संपत्ति बढ़ेगी तो उनमें विलासिता आ जायेगी। परिश्रम करके संपत्ति, धन-दौलत मिले तो ठीक, अगर ऐसे ही मिल जाय तो जीवन को विलासी बना देती है, खोखला कर देती है।

इसलिए श्रीकृष्ण ने जरासंघ को छेड़ दिया तो उसने यदुवंशियों पर आक्रमण कर दिया। उनकी सारी संपत्ति छीन ली। श्रीकृष्ण और बलराम जरासन्ध का सामना करना उचित न समझकर भाग निकले।

हमारे परम प्रेमास्पद भगवान नंगे पैर, नंगे सिर भाग रहे हैं। साथ में केवल एक धोती। माँगकर खाते हैं, धरती पर सोते हैं, साधुओं के आश्रमों में रहते हैं, सत्संग करते हैं। यह भी एक झाँकी है श्रीकृष्ण के जीवन की।

गिरनार के पर्वतों में रहते थे, वहाँ आग लगी तो वहाँ से भी भागे और समुद्र में द्वारका बसायी। उस नगरी पर भी शाल्व ने वायुयान से आक्रमण किया। उनके ससुर के घर में डाका पड़ा, वे मारे गये। उनके वहाँ से स्यमंतक मणि की चोरी हो गयी। स्वयं श्रीकृष्ण के ऊपर मणि चुराने का आरोप लगाया गया। बड़े भाई बलरामजी भी उन्हीं के ऊपर शंका की। भागवत में स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं-

किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति।

'बलराम जी मणि के बारे में मेरा विश्वास नहीं करते।'

जीवन में ऐसे-ऐसे विरोधी प्रसंग आने पर भी श्रीकृष्ण के चित्त में क्षोभ नहीं हुआ।

श्रीकृष्ण सदा साधु-संतों का संग करते थे। घोर आंगिरस ऋषि के आश्रम में वर्षों तक उपनिषद का अध्ययन किया और एकान्त-विरक्तता में रहे। दुर्वासा जैसे ऋषि का आतिथ्य खूब प्रेम से किया। जबकि श्रीकृष्ण के कुल में उत्पन्न हुए यदुवंशी साधु-संतों की मजाक उड़ाते थे। जाम्बवतीनन्दन साम्ब को स्त्री का वेश पहनाकर फिर ऋषि से जाकर पूछते हैं कि, "महाराज ! यह सुंदरी गर्भवती है। उसे बेटा होगा कि बेटी होगी ?"

ऋषि ने कहाः "तुम संतों की मजाक उड़ाते हो तो जाओ, न बेटा होगा न बेटा होगी। पेट पर जो मूसल बाँधा है उसी से तुम्हारा सत्यानाश होगा।"

....तो श्रीकृष्ण साधू-संतों का आदर करते थे जबकि उनके कुटुम्बीजन साधू-संतों की मजाक उड़ाते थे। श्रीकृष्ण तो संयमी होकर ब्रह्मानन्द में रमण करते थे और उनके कुल के लोग शराब पीते थे।

श्रीकृष्ण के जीवन के चढ़ाव-उतार समाज को यह बताते हैं कि तुम्हारा जन्म अगर हथकड़ियोंवाले माँ बाप के घर हो गया हो तभी भी तुम अपने को दीन हीन मत मानना।

हे जीव ! तेरा जन्म अगर कारावास में हो गया हो तभी भी तू चिन्ता मत कर। अपने आन्तरिक दिव्यत्व को जगा। उन्नत कार्य कर। सत्संग कर। समाधि लगा। धर्म, नीति और आत्मज्ञान के अनुकूल आचरण कर। अपने छुपे हुए भगवदभाव को प्रकट कर क्योंकि तू मेरा

स्वरूप है। तेरे कुटुम्बी तेरे विरोधी हों फिर भी तू घबड़ाना नहीं। कभी मामा से भानजे की अनबन हो जाय और दोनों का युद्ध हो जाय, मामा चल बसे तभी भी चिन्ता, दीनता, हीनता महसूस नहीं करना। तेरे परिवार वाले तेरे कहने में न चलें तभी भी तू निराश नहीं होना। जरासंध जैसा राजा तुझसे युद्ध करे तो तू वीर होकर उसका मुकाबला करना। सत्रह-सत्रह बार श्रीकृष्ण ने जरासंध को भगाया। अठारहवीं बार श्रीकृष्ण स्वयं जानबूझकर भागे। उनके भागे में भी लाभ था। अपने कुटुम्बीजनों को सबक सिखाना था।

श्रीकृष्ण के जीवन में कभी हताशा नहीं आयी, कभी निराशा नहीं आयी, कभी पलायनवाद नहीं आया, कभी उद्वेग नहीं आया, कभी चिन्ता नहीं आयी, कभी भय नहीं आया, कभी शोक नहीं आया, कभी विषाद नहीं आया और कभी क्षुद्र अहंकार नहीं आया कि यह देह मैं हूँ।

अन्तिम समय में श्रीकृष्ण के कुटुम्बियों की मति ऋषि के शाप से विपरीत हो गई और आपस में लड़ मरे। श्रीकृष्ण का भी अपमान कर दिया, कुछ का कुछ सुना दिया, फिर भी श्रीकृष्ण के चित्त में क्षोभ नहीं हुआ।

उनका मृत्यु भी कैसा ? उनका देहविलय समाधि करते हुए या पलंग पर आराम करते-करते प्राण छोड़े या तुलसीदल मुँह में डालकर प्राण छोड़े ऐसा नहीं हुआ। एक बहेलिये ने बाण मारा। आखिरी घड़ियाँ हैं तब भी उनके चित्त की समता नहीं जाती। बाण मारने वाले को भी क्षमा करते हुए बोलते हैं- "तू चिन्ता मत करना। ऐसा ही होने वाला था। नियति में जो होना निश्चित हुआ था वही हुआ।"

श्रीकृष्ण ने इन्द्रियों को मन में लगा दिया, मन को बुद्धि में और बुद्धि को अपने शुद्ध-बुद्ध चिदघन चैतन्य आत्मा के चिन्तन में लगाकर कलेवर त्याग दिया।

श्रीकृष्ण का जो प्रागटय है वह नर को अपने नारायण स्वभाव में जगाने का प्रागटय है। जन्माष्टमी एक ऐसा उत्सव है कि कितना भी हारा थका जीव हो, उसे अपने भीतर के रस, प्रेम को प्रकटाने की प्रेरणा मिल जाय। हँसते-खेलते, प्रेम को छलकाते, बाँटते-बरसाते, अहंकारियों को और शोषकों को सबक सिखाते, थके-मांदे-असहायों को सहारा देते, निर्बलों में बल फूँकते, समाज में आध्यात्मिक क्रांति करते हुए, नर को अपने नारायण स्वरूप में पहुँचाने का अदभुत सफल प्रयास श्रीकृष्ण-लीला से हुआ।

यह कृष्ण-अवतरण रोहिणी नक्षत्र में हुआ। मध्यरात्रि के घोर अन्धकार में भी भगवान ने प्रकाश कर दिया। जो कैद से बाहर आ जायें वे भगवान हैं। हम भी तो कैद में बैठे हैं, जैसे वसुदेव-देवकी कंस की जेल में बन्द थे। हमारा भी जीवरूपी वसुदेव और बुद्धिरूपी देवकी देहाभिमान के कारावास में पड़े हैं। हम हाड़-मांस के शरीर में बन्द हैं। इस कैद से हम बाहर आ जायें। इस देह को 'मैं' मानने की गलती से बाहर आ जायें। इस देह की उपलब्धियाँ देह के वियोग वास्तव में हमारे आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं। इस बात का ज्ञान हो जाय तो

जोगी का जोग, तपी का तप, जपी का जप और सदगृहस्थ का सदाचारयुक्त जीवन सफल हो जाता है।

मनुष्य अगर तत्पर हो जाय तो दुःख खोजने पर भी नहीं मिलेगा। सत्य को समझने के लिए, अपने को खोजने के लिए अगर वह तत्पर हो जाय तो दुःख खोजने पर नहीं मिलेगा। हम अपनी असलियत को खोजने में तत्पर नहीं हैं अतः सुखी होने के लिए खूब यत्न करते हैं। सुबह से शाम तक और जीवन से मौत तक प्राणीमात्र यह करता हैः दुःख को हटाना और सुख को थामना।

धन कमाते हैं तो भी सुख के लिये, धन खर्च करते हैं तो भी सुख के लिये। शादी करते हैं तो भी सुख के लिए और पत्नी को मायके भेजते हैं तो भी सुख के लिये। पत्नी के लिये हीरा-जवाहरात ले आते हैं तो भी सुख के लिये और तलाक भी देते हैं तो भी सुख के लिये। प्राणीमात्र जो कुछ चेष्टा करता है वह सुख के लिए ही करता है। सुख को थामना और दुःख को हटाना। फिर भी देखा जाये तो आदमी दुःखी ही दुःखी है क्योंकि जहाँ सुख है वहाँ उसने खोज नहीं की। जहाँ दुःख का प्रवेश नहीं उस आत्मा में जीव जाता नहीं। भगवान हमारे परम सुहृद हैं। उन परम सुहृद के उपदेश को सुनकर अगर जीव भीतर अपने स्वरूप में जाय तो सुख और दुःख की चोटों से परे परमानन्द का अनुभव हो जाय।

श्रीकृष्ण संधिदूत होकर गये। युद्ध टालने की कोशिश की, युद्ध टला नहीं। संधि न हो पायी फिर भी भीष्म का सत्कार किया, मान दिया। 'मैं संधि करने गया.... मेरी बात ये लोग नहीं मानते....' ऐसा समझकर उनको चोट नहीं लगी। चोट हमेशा अहंकार को लगती है, आत्मा को नहीं लगती। दुःख हमेशा अहंकार को होता है, मन को होता है, आत्मा को नहीं होता। साधारण जीव मन में जीते हैं और उन साधारण जीवों को अपने शिवत्व का ज्ञान कराने के लिए भगवान को जो आविर्भाव हुआ उसे बोलते हैं कृष्णावतार।

मैंने सुनी है एक कहानी।

एक बार अंगूर और करेलों की मुलाकात हुई। अंगूरों ने कहाः "हम कितने मीठे-मधुर और स्वादिष्ट हैं। हमको देखकर लोगों के मुँह में पानी आ जाता है। तुम तो कडुवे कडुवे करेले।"

करेलों ने कहाः "बस बस, चुप बैठो। तुमको देखकर लोगों के मन की लोलुपता बढ़ जाती है। तुम्हारा स्वाद लेते हैं, मजा लेते हैं तो उनको सूइयाँ (इन्जैक्शन) चुभानी पड़ती हैं। लोग बीमार होते हैं, मधुप्रमेह (डायबिटीज़) हो जाता है। हम जब लोगों की जिह्वा पर जाते हैं तो कडुवे जरूर लगते हैं, किन्तु लोगों में स्फूर्ति ले आते हैं, डायबिटीज़ को मार भगाते हैं और तन्दुरूस्ती का दान करते हैं। लगते कडुवे हैं पर काम बढ़िया करते हैं।"

कभी-कभी कोई प्रसंग, कोई दुःख आ जाता है तो लगता कडुवा है पर वह दुःख भी सत्संग में भेज देता है। संसार की समस्याएँ भी हरि के चरणों तक पहुँचा देती हैं। दुःख आये तब समझ लेना कि वह करेले का काम करता है।

हम मीठी-मीठी कथाएँ सुने, मीठे-मीठे चुटकुले सुनें, अच्छा-अच्छा लगे वह सुनें, देखें, खाये, पियें - यह तो सब ठीक लेकिन कभी-कभी ब्रह्मज्ञान की सूक्ष्म बात भी सुनना चाहिए। समझ में न आये तब भी सुनना चाहिए। अच्छा न लगे तब भी स्वास्थ्य-सुरक्षा के लिए मधुप्रमेहवालों को करेले का रस पीना पड़ता है। ऐसे ही जन्म मरण की डायबिटीज़ लगी है तो साधन-भजनरूपी करेलों का रस अच्छा न लगे तब भी आदर से पीना चाहिए।

जब व्यास जी बोलते हैं, नारदजी बोलते हैं, भगवान बोलते हैं, शास्त्र बोलते हैं वह सब मीठा मीठा ही लगे यह जरूरी नहीं है। बुद्धि की सूक्ष्मता कैसी होगी ? वक्ता जितना ऊँचा है, महान् है, उन्नत है और श्रोता भी बढ़िया योग्यता वाला है तो उन दोनों के बीच का संवाद हम लोगों के लिए उन्नति करने वाला है। चक्रम की कथाएँ, नावेल और साधारण किस्से-कहानियाँ-कथाएँ पढ़ें-सुनें तो वे अच्छे तो लगते हैं मगर बुद्धि को स्थूल बना देते हैं। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि कठिन तो लगते हैं मगर बुद्धि को सूक्ष्म बना देते हैं और सूक्ष्म बुद्धि ही ठीक आत्मिक प्रकाश पा सकती है।

भगवान की कथा जब पढ़ते हैं, बोलते हैं, सुनते हैं उस समय भीतर अन्तःकरण धुलता है, चित्त में प्रसन्नता आती है, वक्ता की कुशलता से श्रोताओं में आत्मानन्द छलकता है। मानो कभी उबासी भी आये फिर भी भगवान की कथा, हरिचर्चा, सत्संग कल्याणकारी है।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ बड़ी अनूठी है। उनके जीवन के चढ़ाव उतार से जीव को सीखने को मिलता है कि हमारे जीवन में भी उतार चढ़ाव आ जाय तो क्या बड़ी बात है ? जब सोलह कलाधारी पूर्णावतार भगवान श्रीकृष्ण के कुटुम्बी उनके विरोधी हो सकते हैं तो हमारी श्रीमती, हमारे श्रीमान या बेटा-बेटी हमारा कहा नहीं मानते तो क्या बड़ी बात है ? श्रीकृष्ण में इतनी शक्ति थी कि सत्रह बार जरासंध को मार भगाया फिर भी अठारहवाँ बार खुद को भागना पड़ा तो कभी-कभी हमें भी घर छोड़कर, गाँव छोड़कर कहीं और जगह जाना पड़े त क्या हो गया ?

"बापू ! मेरी बदली होती है। मुझे अपना घर, गाँव छोड़ना पड़ता है।"

अरे, तेरे भगवान को भी छोड़ना पड़ा था तो तू क्यों घबड़ाता है ?

हारे हुए जीव को भगवान की लीलाओं से आश्वासन मिल जाता है। उदास को प्रेम का दान मिल जाता है। अहंकारी को निरहंकारी होने का सबक मिल जाता है।

कहाँ संकल्प मात्र से उथल-पुथल कर देने का सामर्थ्य रखने वाले श्रीकृष्ण और कहाँ नंगे पैर, नंगे सिर, एक ही धोती में तीन महीने तक उनका ऋषियों के आश्रम में रहना। टुकड़ा माँगकर खाया और सत्संग सुना। तेरह वर्ष घोर आंगिरस ऋषि के आश्रम में उपनिषदों का अध्ययन किया और विरक्त जीवन जिये एकान्त में। एकान्त में विरक्त जीवन जीने से योग्यता बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। श्रीकृष्ण का प्रभाव बढ़ गया, सामर्थ्य बढ़ गया, यश बढ़ गया। घोर

आंगिरस ऋषि के आश्रम का एकान्तवास और उपनिषद का अध्ययन युद्ध के मैदान में भगवद् गीता होकर प्रकट हो गया।

श्रीकृष्ण के चरित्र महाभारत में, हरिवंशपुराण में ब्रह्मवैवर्तपुराण में, भागवत में आते हैं। उन चरित्रों से आप अपने खटकने वाले जो भाव जीवन में हैं उनको हटाकर, संसार की परिवर्तनशीलता को समझकर, अपने अपरिवर्तनशील कूटस्थ आत्मा को पहचान कर आप भी श्रीकृष्ण-तत्त्व का साक्षात्कार करे। इसलिए श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी का उत्सव होता है।

श्रीकृष्ण का जीवन सर्वांगी विकसित है। उन्हें चार वेदों का ज्ञान है। गीता वेदों का प्रसाद है, उपनिषदों का ज्ञान है। चार वेद हैं- ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। चार उपवेद हैं- आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्यवेद और गांधर्ववेद। आयुर्वेद में भी श्रीकृष्ण कुशल थे। आरोग्य के सिद्धान्त बढ़िया जानते थे। गीता में भी उन्होंने कहाः

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नाबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

'दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।'

(भगवद् गीताः 6.17)

युद्ध के मैदान में भी तंदुरूस्ती की तरफ इशारा कर दिया। युद्ध में थके, मांदे, घावों से भरे घोड़ों को शाम के समय ऐसी मरहमपट्टी ऐसी मालिश करते थे कि दूसरे दिन वे फिर से भागदौड़ करने के लिए तैयार हो जाते थे।

धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या में भी वे अदभुत थे। सत्रह बार जरासंध को बिना शस्त्र ही हरा दिया। युद्ध की विद्या में ऐसे कुशल थे। राजनीति में भी अव्वल नंबर थे।

स्थापत्य वेद का ज्ञान भी श्रीकृष्ण में खूब था। द्वारिका नगरी बनायी। रथों के चलने की सड़क अलग, पैदल जाने वालों का रास्ता अलग। बीच में बगीचे, विश्रामगृह, प्याऊ आदि। आदमी को वैकुण्ठ जैसा सुख मिले ऐसी रचना थी, ऐसा सुन्दर नक्शा बनाया, बड़ी अनूठी द्वारिका बसायी।

गांधर्ववेद में भी उन्होंने अपनी कुशलता दिखायी। गांधर्ववेद में नृत्य, गीत और वाद्य होते हैं, गाना-बजाना होता है। बजाना भी दो प्रकार का होता हैः एक ठोककर बजाया जाता है, जैसे तबला, ढोलक, मंजीरा आदि। दूसरा फूँककर बजाया जाता है, जैसे बँसी, बिगुल, तुरी, शहनाई आदि। ठोककर बजाने वाले वाद्यों से फूँककर बजाये जाने वाले वाद्य अच्छे माने जाते हैं। उसमें भी बँसी बढ़िया है।

श्रीकृष्ण बँसी ऐसी बजाते कि जो दूध के लिए विरह में छटपटाने वाले बछड़े माँ आने पर दूध पीने लगते वे श्रीकृष्ण की बँसी सुनकर दूध पीना भूल जाते और बँसी का सुख पाकर तन्मय

हो जाते। श्रीकृष्ण अपनी बँसी में अपने ऐसे प्राण फूँकते, प्रेम फूँकते कि सुनने वालों के चित्त चुरा लेते।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अवतार

जीव का जीवन सर्वांगी विकसित हो इसलिए भगवान के अवतार होते हैं। उस समय उन अवतारों से तो जीव को प्रेरणा मिलती है, हजारों वर्षों के बाद भी प्रेरणा मिलती रहती है।

ईश्वर के कई अवतार माने गये हैं- नित्य अवतार, नैमित्तिक अवतार, आवेश अवतार, प्रवेश अवतार, स्फूर्ति अवतार, आविर्भाव अवतार, अन्तर्यामी रूप से अवतार, विभूति अवतार, आयुध अवतार आदि।

भगवान की अनन्त-अनन्त कलाएँ जिस भगवान की समष्टि कला से स्फुरित होती है, उन कलाओं में से कुछ कलाएँ जो संसार व्यवहार को चलाने में पर्याप्त हो जाती हैं वे सब कलाएँ मिलकर सोलह होती हैं। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को षोडश कलाधारी भी कहते हैं और पूर्णावतार भी कहते हैं। वास्तव में, भगवान में सोलह कलाएँ ही हैं ऐसी बात नहीं है। अनन्त-अनन्त कलाओं का सागर है वह। फिर भी हमारे जीवन को या इस जगत को चलाने के लिए भगवान परब्रह्म परमात्मा, सच्चिदानन्द की सोलह कलाएँ पर्याप्त होती हैं। कभी दस कलाओं से प्रकट होने की आवश्यकता पड़ती है तो कभी दो कलाओं से काम चल जाता है, कभी एक कला से। एक कला से भी कम में जब काम चल जाता है, ऐसा जब अवतार होता है उसे अंशावतार कहते हैं। उससे भी कम कला से काम करना होता है तो उसे विभूति अवतार कहते हैं।

अवतार का अर्थ क्या है ?

अवतरति इति अवतारः। जो अवतरण करे, जो ऊपर से नीचे आये। कहाँ तो परात्पर परब्रह्म, निर्गुण, निराकार, सत् चित् आनन्द, अव्यक्त, अजन्मा.... और वह जन्म लेकर आये ! अव्यक्त व्यक्त हो जाय ! अजन्मा जन्म को स्वीकार कर ले, अकर्त्ता कर्तृत्व को स्वीकार कर ले, अभोक्ता भोग को स्वीकार कर ले। यह अवतार है। **अवतरति इति अवतारः।** ऊपर से नीचे आना।

जो शुद्ध बुद्ध निराकार हो वह साकार हो जाय। जिसको कोई आवश्यकता नहीं वह छछियन भरी छाछ पर नाचने लग जाये। जिसको कोई भगा न सके उसको भागने की लीला करनी पड़े। ऐसा अवतार मनुष्य के लिए है, कल्याण के लिए है।

भगवान का एक अवतार होता है प्रतीक अवतार, जैसे भक्त भगवान की प्रतिमा बना लेता है, जिस समय भोग लगाता है, जो भोग लगाता है, जिस भाव से लगा देता है, पत्र, पुष्प और जो कुछ भी अर्पण करता है उस रूप में ग्रहण करके वह भगवान अन्तर्यामी प्रतिमा अवतार में

भक्त की भावना और शक्ति पुष्ट करते हैं। कभी भगवान की मूर्ति से, प्रतिमा से, चित्र से फूल या फूलमाला गिर पड़ी तो वह भक्त की पूजा स्वीकार हो गई इसका संकेत समझा जाता है।

हम जब साधना काल के प्रारंभ में पूजा करते थे तब कभी-कभी ऐसा होता था। फूल की माला भगवान को चढ़ा दी, फिर पूजा में तन्मय हो गये। एकाएक माला गिर पड़ी तो चित्त में बड़ी प्रसन्नता होती कि देव प्रसन्न हैं।

प्रतिमा में भगवद् बुद्धि करके उपासना की और प्रतिमा से शांति, आनंद और प्रेरणा मिलने लगी। यह प्रतिमा अवतार। कोई श्रीकृष्ण की प्रतिमा रखता है कोई श्रीराम की की, कोई किसी और की। धन्ना जाट जैसे को पण्डित जी ने भाँग घोटने का सिलबट्टा दे दिया 'यह ठाकुरजी हैं' कहकर। धन्ना जाट ने उसमें भगवान की दृढ़ भावना की तो भगवान प्रकट हो गये।

भगवान प्रतिमा के द्वारा हमारी उन्नति कर दें, प्रतिमा के द्वारा अवतरित हो जायें उसको कहते हैं प्रतिमा अवतार। जिस प्रतिमा को आप श्रद्धा-भक्ति से पत्र-पुष्प अर्पण करते हो, भोग लगाते हो, उस प्रतिमा से आपको प्रेरणा मिलती है।

अंतर्यामी अवतार दो प्रकार का होता है। सबके अंतर्यामी भगवान सबको सत्ता-स्फूर्ति देते हैं, कुछ कहते नहीं। जन-साधारण के साथ भी भगवान हैं। वह उन्हें माने चाहे न माने, आस्तिक हो या नास्तिक, भगवान को गालियाँ देता हो फिर भी भगवान उसकी आँख को देखने की सत्ता देते हैं, कान को सुनने की सत्ता देते हैं। पेट में उसका भोजन पचाने को शक्ति देते हैं। दुराचारी से दुराचारी, पापी से भी पापी, महापापी हो उसको भी अपनी सत्ता, स्फूर्ति और चेतना देते हैं क्योंकि वे प्राणिमात्र के सुहृद हैं। वे सबको भीतर अंतर्यामी आत्मा होकर बैठे हैं। 'यह दुष्ट मुझे मानता नहीं, भजता नहीं.... चलो उसके हृदय को बंद कर दूँ...' ऐसा भगवान 'नहीं' कभी नहीं कहते। बिजली का बिल दो महीने तक नहीं भरो तो 'Connection Cut' हो जाता है, किन्तु भगवान को दस साल तक सलाम न भरो, रामनाम का बिल न भरो तो भी आपको जीवन चेतना का Connection Cut नहीं होता। जितने श्वास उसके भाग्य में होते हैं उतने चलने देते हैं। यह भगवान का अंतर्यामी अवतार अंतर्यामी सत्ता स्वरूप से सब जनों के लिए होता है। भक्तजनों के लिए है अन्तर्यामी प्रेरणा अवतार। जो भक्त हैं, जो भक्ति करते हैं, उनका अंतर्यामी प्रेरक होता है, चित्त में प्रेरणा देता है किः 'अब यह करो, वह करो। सावन का महीना आया है तो अनुष्ठान करो। इतने जप तप हो गय, अब आत्मज्ञान के सत्संग में जाओ। गुरूमुख बनो। निगुरे रहने से कोई काम नहीं बनेगा....' इस प्रकार अंतर्यामी भगवान प्रेरणा देते हैं।

इस प्रकार के भगवान के कई तरह के अवतार होते हैं। युग-युग में, वक्त-वक्त पर, हर दिल और हर व्यक्ति की योग्यता पर भिन्न-भिन्न प्रेरणा और प्रकाश मिले ऐसे अवतार होते हैं।

श्रीकृष्ण का अवतार सोलह कला से सम्पन्न, सर्वांगी विकास कराने वाला, सब साधकों को, भक्तों को प्रकाश मिल सके, दुर्जनों का दमन हो सके, मदोन्मत्त राजाओं का मद चूर कर सके, माली, कुब्जा, दर्जी और तमाम साधारण जीवों पर अहैतुकी कृपा बरसा सके ऐसा पूर्ण

लीला अवतार था। जो बँधे हुए को छुड़ा दे, निराश को आश्वासन दे, रूखे को रस से भर दे, प्यास को प्रेम से भर दे ऐसा अवतार था श्रीकृष्ण का। कभी-कभी छोटे-मोटे काम के लिए आवेशावतार हो जाता है, कभी अंशावतार हो जाता है, जैसे वामन अवतार, नृसिंह अवतार, परशुराम अवतार। कभी आयुधावतार हो जाते हैं। कभी संकल्प किया और भगवान के पास आयुध आ जाता है, सुदर्शन चक्र आदि आ जाता है।

परात्पर परब्रह्म की शक्ति कभी अंशावतार में तो कभी आयुध-अवतार में तो कभी संतों के हृदय द्वारा संत-अवतार में तो कभी कारक अवतार में अवतरित होते हुए मानव जात को अपने उन्नत शिखरों पर ले जाने का काम करती है। मानव अगर तत्पर होकर अपने उन्नत शिखरों पर पहुँचे तो उसे सुख और दुःख दोनों दिखाई पड़ता है खिलवाड़, उपलब्धि और हानि दोनों दिखाई पड़ता है खिलवाड़, शरीर और शरीर के सम्बन्ध दिखाई पड़ते हैं खिलवाड़। उसे अपनी आत्मा की सत्यता का अनुभव हो जाता है।

आत्मा की सत्यता का अनुभव हो जाये तो ऐसा कोई आदमी नहीं जो दुःख खोजे और उसे दुःख मिल जाये। ऐसा कोई आदमी नहीं जो मुक्त न हो। अपने आत्मा की अनुभूति हो जाये तो फिर आपको दुःख नहीं होगा, आपके संपर्क में आने वाले लोग भी निर्दुःख जीवन जीने के मार्ग पर आगे कूच कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण को जो प्रेम करे उसको तो वे प्रेम दें ही, उनको जो देखे नहीं उस पर भी प्रेम से बरस पड़े ऐसे श्रीकृष्ण दयालु थे। वे मथुरा में गये तो दर्जी से ग्वालबालों के कपड़े ठीक करवा कर उसका उद्धार किया। पर कुब्जा ? जिसने श्रीकृष्ण की ओर देखा तक नहीं फिर भी उसका कल्याण करना चूके नहीं।

विकारी व्यक्तियों का, भोग-वासना में फँसे हुए लोगों का संपर्क करने वाली बुद्धि कुब्जा है।

कुब्जा छोटी जाति की थी। राजा-महाराजाओं को तेल-मालिश करती, अंगराग लगाती, कंस की चाकरी करती। ऐसा उसका धंधा था।

श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए सारा मथुरा उमड़ पड़ा था लेकिन कुब्जा कृष्ण के साथ ही पैदल जा रही है फिर भी आँख उठाकर देखती नहीं। श्रीकृष्ण तो उदारता का उदधि थे। उन्होंने सोचाः जब इतने सारे लोग आनन्दित हो रहे है, प्रसन्न हो रहे हैं तो यह क्यों थोबड़ा चढ़ाकर जाती है ? कृष्ण कहने लगेः

"हे सुन्दरी !"

कुब्जा सोचने लगी कि मैं सुन्दरी नहीं.... आज तक मुझे किसी ने सुन्दरी कहा ही नहीं। ये किसी और को बुलाते होंगे। कुब्जा ने सुना अनसुना कर दिया। श्रीकृष्ण ने दुबारा कहाः

"हे सुन्दरी !"

कुब्जा ने सोचाः "कोई और सुन्दरी होगी। मगर ग्वालबालों के टोले में तो कोई स्त्री नहीं थी। जब तीसरी बार श्रीकृष्ण ने कहाः

"हे सुन्दरी !"

तब कुब्जा से रहा न गया। वह बोल उठीः

"बोलो सुन्दर ! क्या बोलते हो ?"

जो कुरूप में भी सौन्दर्य को देख लें वे कृष्ण हैं। सच पूछो तो कुरूप से कुरूप आदमी भी आत्म-सौन्दर्य छुपा है। श्रीकृष्ण को उस कुरूप कुब्जा में भी अपना सौन्दर्य स्वरूप सच्चिदानंद दिखा। उन्होंने कुब्जा से कहाः

"यह चन्दन तू मुझे देगी ?"

"हाँ लो, लगा दो अपने बदन पर।"

उस कुब्जा को किसी ने सुन्दर कहा नहीं था और श्रीकृष्ण जो कुछ कहते, सच्चे हृदय से कहते। उनका व्यवहार कृत्रिम नहीं था। कुछ विनोद भले किसी से कर लें वह अलग बात है, बाकी भीतर से जो भी करते, गहराई से करते। पूर्णावतार तो जो कुछ करेगा, पूर्ण ही करेगा। विनोद करते तो पूरा, उपदेश करते तो पूरा, **नरो वा कुंजरो वा** का आयोजन किया तो पूरा, संधि-दूत होकर गये तो पूरे, शिशुपाल को क्षमा की तो पूरे, पूरी सौ गालियाँ सुन ली। वे जो कुछ भी करते हैं, पूरा करते है फिर भी कभी कर्तृत्व भार से बोझिल नहीं होते। यह नारायण की लीला नर को जगा देती है कि हे नर ! तू भी बोझील मत हो। चार पैसे का कपड़ा, लकड़ा, किराना बेचकर, 'मैंने इतना सारा धंधा किया' यह अहंकार मत रख। पाँच-पच्चीस हजार की मिठाई बेचकर अपने को मिठाईवाला मत मान। तू तो ब्रह्मवाला है।

'मैं मिठाईवाला हूँ.... मैं कपड़े वाला हूँ.... मैं सोने-चाँदी वाला हूँ.... मैं मकानवाला हूँ... मैं दुकानवाला हूँ.... मैं ऑफिसवाला हूँ... मैं पेंटवाला हूँ..... मैं दाढ़ीवाला हूँ..... ' यह सब मन का धोखा है। 'मैं आत्मावाला हूँ... मैं ब्रह्मवाला हूँ...' इस प्रकार हे जीव ! तू तो परमात्मावाला है। तेरी सच्ची मूड़ी तो परमात्मा-रस है।

श्रीकृष्ण ऐसे महान नेता थे कि उनके कहने मात्र से राजाओं ने राजपाट का त्याग करके ऋषि जीवन जीना स्वीकार कर लिया। ऐसे श्रीकृष्ण थे फिर भी बड़े त्यागी थे, व्यवहार में अनासक्त थे। हृदय में प्रेम.... आँखों में दिव्य दृष्टि....। ऐसा जीवन जीवनदाता ने जीकर प्राणीमात्र को, मनुष्य मात्र को सिखाया के हे जीव ! तू मेरा ही अंश है। तू चाहे तो तू भी ऐसा हो सकता है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

'इस देह में यह सनातन जीव मेरा ही अंश है और वही इन प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है।'

(भगवद् गीताः 15.7)

तुम मेरे अंश हो, तुम भी सनातन हो। जैसे, मेरे कई दिव्य जन्म हो गये, मैं उनको जानता हूँ। हे अर्जुन ! तुम नहीं जानते हो, बाकी तुम भी पहले से हो।

अर्जुन को निमित्त करके भगवान सबको उपदेश देते हैं कि आप भी अनादि काल से हो। इस शरीर के पहले तुम थे। बदलने वाले शरीरों में कभी न बदलने वाले ज्ञानस्वरूप आत्मा को जान लेना ही मनुष्य जन्म का फल है।

'मैं हूँ' जहाँ से उठता है उस ज्ञानस्वरूप अधिष्ठान में जो विश्रांति पा लेता है वह श्रीकृष्ण के स्वरूप को ठीक से जान लेता है।

इस ज्ञान को पचाने के लिए बुद्धि की पवित्रता चाहिए। बुद्धि की पवित्रता के लिए यज्ञ, होम, हवन, दान, पुण्य से सब बहिरंग साधन हैं। धारणा, ध्यान आदि अंतरंग साधन हैं और आत्मज्ञान का सत्संग परम अंतरंग साधन हैं। सत्संग की बलिहारी है।

सत्संग सुनने से जितना पुण्य होता है उसका क्या बयान करें !

तीरथ नहाये एक फल संत मिले फल चार।
सदगुरू मिले अनन्त फल कहे कबीर विचार।।

तीर्थ में स्नान करो तो पुण्य बढ़ेगा। संत का सान्निध्य मिले तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के द्वार खुल जाएँगे। वे ही संत जब सदगुरू के रूप में मिल जाते हैं तो उनकी वाणी हमारे हृदय में ऐसा गहरा प्रभाव डालती है कि हम अपने वास्तविक 'मैं' में पहुँच जाते हैं।

हमारा 'मैं' तत्त्व से देखा जाय तो अनन्त है। एक शरीर में ही नहीं बल्कि हरेक शरीर में जो 'मैं.... मैं.... मैं... मैं....' चल रहा है वह अनन्त है। उस अनन्त परमात्मा का ज्ञान जीव को प्राप्त हो जाता है। इसलिए कबीर जी न ठीक ही कहा है किः

तीरथ नहाये एक फल संत मिले फल चार।
सदगुरू मिले अनन्त फल कहे कबीर विचार।।
सदगुरू मेरा सूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट।।

जीव को भ्रम हुआ है कि 'यह करूँ तो सुखी हो जाऊँ, यह मिले तो सुखी हो जाऊँ....' लेकिन आज तक जो मिला है, आज के बाद जो भी संसार का मिलेगा, आज तक जो भी संसार का जाना है और आज के बाद जो भी जानोगे, वह मृत्यु के एक झटके में सब पराया हो जायेगा।

मृत्यु झटका मारकर सब छीन ले उसके पहले, जहाँ मौत की गति नहीं उस अपने आत्मा को 'मैं' स्वरूप में जान ले, अपने कृष्ण तत्त्व को जान ले, उसका बेड़ा हो जाता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं-

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।

'हे अर्जुन ! मैं अमृत हूँ, मैं मृत्यु हूँ, मैं सत् हूँ और मैं असत् हूँ।'

(गीताः 9.19)

कितना दिव्य अनुभव ! कितनी आत्मनिष्ठा ! कितना सर्वात्मभाव ! सर्वत्र एकात्मदृष्टि ! जड़-चेतन में अपनी सत्ता, चेतनता और आनन्दरूपता जो विलस रही है उसक प्रत्यक्ष अनुभव !

आप दुनियाँ की मजहबी पोथियों, मत-मतांतरों, पीर-पैगम्बरों को पढ़ लीजिये, सुन लीजिये। उनमें से किसी में ऐसा कहने की हिम्मत है ? किन्तु श्रीकृष्ण भगवान के इस कथन से सर्वत्र एकात्मदृष्टि और उनके पूर्णावतार, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रेम, पूर्ण समता आदि छलकते हैं।

श्रीकृष्ण जेल में पैदा हुए हैं, मुस्कुरा रहे हैं। मथुरा में धनुषयज्ञ में जाना पड़ता है तो भी मुस्करा रहे हैं। मामा के षडयंत्रों के समय भी मुस्करा रहे हैं। संधिदूत होकर गये तब भी मुस्करा रहे हैं। शिशुपाल सौ-सौ बार अपमान करता है, हर अपमान का बदला मृत्युदंड हो सकता है, फिर भी चित्त की समता वही की वही। युद्ध के मैदान में अपने ज्ञानामृत से मुस्कराते हुए उलझे, थके, हारे अर्जुन को भक्ति का, योग का, ज्ञान का आत्म-अमृतपान कराते हैं।

संसार की किसी भी परिस्थिति ने उन पर प्रभाव नहीं डाला। जेल में पैदा होने से, पूतना के विषपान कराने से, मामा कंस के जुल्मों से, मामा को मारने से, नगर छोड़कर भागने से, भिक्षा माँगते ऋषियों के आश्रम में निवास करने से, धरती पर सोने से, लोगों का और स्वयं अपने भाई का भी अविश्वास होने से, बच्चों के उद्दण्ड होने से, किसी भी कारण से श्रीकृष्ण के चेहरे पर शिकन नहीं पड़ती। उनका चित्त कभी उद्विग्न नहीं हुआ। सदा समता के साम्राज्य में। समचित्त श्रीकृष्ण का चेहरा कभी मुरझाया नहीं। किसी भी वस्तु की प्राप्ति-अप्राप्ति से, किसी भी व्यक्ति की निन्दा-स्तुति से श्रीकृष्ण की मुखप्रभा म्लान नहीं हुई।

नोदेति नास्तमेत्येषा सुखे दुःखे मुखप्रभा।

श्रीकृष्ण यह नहीं कहते कि आप मंदिर में, तीर्थस्थान में या उत्तम कुल में प्रगट होगे तभी मुक्त होगे। श्रीकृष्ण तो कहते हैं कि अगर आप पापी से भी पापी हो, दुराचारी से भी दुराचारी हो फिर भी मुक्ति के अधिकारी हो।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह संपूर्ण पाप-समुद्र से भली-भाँति तर जायेगा।'

(भगवद् गीताः 4.36)

हे साधक ! इस जन्माष्टमी के प्रसंग पर तेजस्वी पूर्णावतार श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाओं से, उपदेशों से और श्रीकृष्ण की समता और साहसी आचरणों से सबक सीख, सम रह, प्रसन्न रह, शांत हो, साहसी हो, सदाचारी हो। आप धर्म में स्थिर रह, औरों को धर्म के मार्ग में लगाता रह। मुस्कराते हुए आध्यात्मिक उन्नति करता रह। औरों को सहाय करता रह। कदम आगे रख। हिम्मत रख। विजय तेरी है। सफल जीवन जीने का ढंग यही है।

जय श्रीकृष्ण ! कृष्ण कन्हैयालाल की जय....!

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीकृष्ण और रूक्मिणी

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यापत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्यतिरक्रियाः।।

'निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, संतान और धन के लोलुप नहीं हैं। निष्क्रिय और देह-गेह से सम्बन्धरहित हैं दीपशिखा के समान साक्षी मात्र हैं। हम अपने आत्मा के साक्षात्कार से ही पूर्णकाम हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 10.60.20)

भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कह रहे हैं।

रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को पत्र लिखा था। साधु-ब्राह्मणों से रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण ने गुण, यश, पराक्रम, चातुर्य, सहजता, सरलता, निर्द्वन्द्वता, निरामयता आदि सदगुण सुनकर मन ही मन संकल्प किया कि वरूँगी तो गिरधर गोपाल को ही। उसके भाई रुक्मि, पिता, भीष्मक तथा अन्य लोगों की मर्जी शिशुपाल के साथ उसका विवाह करने की थी, जबकि रुक्मिणी की मर्जी श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने की थी।

जीव जब भगवान की सहजता, आनन्द, मुक्तता, रसमयता जानता है तो वह भी इच्छा करता है कि मैं भगवान को ही प्राप्त हो जाऊँ। जैसे श्रीकृष्ण को सन्देशा पहुँचाने के लिए रुक्मिणी को ब्राह्मण की जरूरत पड़ी थी ऐसे ही जीव को ब्रह्मवेत्ता सदगुरू की आवश्यकता पड़ती है कि परमात्म-स्वरूप में सन्देशा पहुँचा दें।

रुक्मिणी ने पत्र लिखकर श्रीकृष्ण को पहुँचाने के लिए एक ब्राह्मण को द्वारिका भेजा। ब्राह्मणदेव द्वारिका पहुँचे और पत्र दे दिया। उस पत्र में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को विनती की थी कि मेरे कुटुम्बीजन मेरा विवाह ऐहिक मोह-माया में पड़े हुए, वासना के कीड़े समान राजाओं से करना चाहते हैं लेकिन मैं आपको दिल से वर चुकी।

रुक्मिणी की तरह स्त्रियाँ जब जिज्ञासु बनती हैं तब सोचती हैं कि संसार का वर हमको छोड़कर चला जाय तो हम विधवा हो जाती है अथवा हम उसको छोड़कर चली जायें तो दूसरे जन्म में दूसरे वर को वरना पड़ता है। इस देह के वर तो कितने ही जन्मों में कितने ही बदले और इस जन्म में भी न जाने कौन कितना किसके साथ रहेगा, कोई पता नहीं। इन वरों के साथ रहते हुए भी जो महिलाएँ आत्मवर को वरने के लिए तत्पर रहती हैं वे जिज्ञासु कही जाती है।

मैं तो वरूँ मेरे गिरधर गोपाल को,

मेरो चुडलो अमर हो जाय।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण को वरना चाहती है।

यह जीव जब अपने शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वरूप को वरना चाहता है तो वह प्रेम में चढ़ता है। जीव किसी हाड़-मांस के पति या पत्नी को वरकर विकारी सुख भोगना चाहता है तब वह प्रेम में पड़ता है। शरीर के द्वारा जब सुख लेने की लालच होती है तो प्रेम में पड़ता है और अन्तर्मुख होकर जब परम सुख में गोता मारने की इच्छा होती है तब वह प्रेम में चढ़ता है। प्रेम किये बना तो कोई रह ही नहीं सकता। कोई प्रेम में पड़ता है तो कोई प्रेम में चढ़ता है।

प्रेम में जो पड़े वह संसार है....... प्रेम में जो चढ़े वह साक्षात्कार है।

रुक्मिणी का सन्देशा पाकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए कि यह जीव मुझे वरना चाहता है। ईश्वर का यह सहज स्वभाव है कि अगर कोई उन्हें पाना चाहे तो वे उसका हाथ पकड़ लेते हैं। किसी भी समय, कैसा भी प्रयोग करके जीव का हाथ पकड़ ही लेते हैं।

जीव जब ईश्वर का साक्षात्कार करने चलता है तब देवता लोग प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि जीव होगा तो जन्मेगा, यज्ञ होम-हवन-पूजन करेगा, भोग चढ़ायेगा, देवताओं आदि का गाड़ा चलता रहेगा। जीव अगर साक्षात्कार करेगा तो उनके सारे प्रभावों से अलग हो जायेगा, ऊपर उठ जायगा। देवी-देवता तो नहीं चाहते कि तुम साक्षात्कार कर लो, तुम्हारे कुटुम्बीजन भी नहीं चाहते, तुम्हारी पत्नी भी नहीं चाहती और तुम्हारा पति भी नहीं चाहता। अगर तुम थोड़ा-सा ही साक्षात्कार के मार्ग पर आगे बढ़े तो टाँग खींचने वाले तैयार ही हैं।

भक्ति के मार्ग पर, ईश्वर के मार्ग पर नहीं चलोगे तो लोग बोलेंगे नास्तिक है। थोड़ा सा चलोगे और सर्वसामान्य ढंग से मंदिर गये, घंटनाद कर दिया, आरती कर दी, टीला-टपका कर दिया, किसी संप्रदाय का भक्त कहला दिया....... तब तक तो ठीक है। जब आत्मा-परमात्मा की एकता की तरफ आगे कदम रखोगे तो कुटुम्बी लोग तुमको विघ्न डालेंगे। जो तुमको ध्यान सिखाते थे, जो तुमको मंदिर में, आश्रम में ले गये वे ही तुम्हें फिर समझाएँगे कि, 'इतनी सारी भक्ति क्या करना ? हम भी तो भक्त हैं, हम भी तो बापू के शिष्य हैं। आप जरा ध्यान भजन करना कम करो कम.... ऐसे कुछ चलता है क्या ?'

जो माँ ध्यान सिखाती थी वही माँ आसुमल को समझाने लगी थी कि, 'बेटा इतना सारा भजन नहीं करना चाहिए। मुझे पड़ोसी माई बोलती है कि तुम्हारा बेटा प्रभात में भगवान के ध्यान में बैठा रहता है, रात को भी घण्टों तक बैठा रहता है। वह बहुत भजन करता है तो भगवान को बार-बार विक्षेप होता होगा। लक्ष्मी जी की सेवा लेना छोड़कर उन्हें बार-बार भगत के पास आना पड़ता होगा तो लक्ष्मी जी रूठ जायेगी तुम्हारे घर से। अतः बेटा ! ज्यादा ध्यान भजन करना ठीक नहीं।'

भोली माँ ने हमें समझाया कि ज्यादा भक्ति नहीं करना, शायद लक्ष्मी रूठ जाय तो ?

जो लोग आपको ईश्वर के मार्ग ले जाते हैं वे ही लोग आपको रोकेंगे, यदि आपकी साधना की गाड़ी ने जोर पकड़ा तो। अगर वे लोग नहीं रोकते अथवा उनके रोकने से आप नहीं रुके तो देवता लोग कुछ न कुछ प्रलोभन भेजेंगे। अथवा यश आ जायगा, रिद्धि-सिद्धि आ जायेगी, सत्य-संकल्प सिद्धि आ जायगी। महसूस करोगे कि मैं जो संकल्प करता हूँ वह पूर्ण होने लगता है।

अपने आश्रम के एक साधक ने पंचेड़ (रतलाम) के आश्रम में रहकर साठ दिन का अनुष्ठान किया। छोटी-मोटी कुछ इच्छा हुई और जरा सा ऐसा हो गया। उसने गाँठ बाँध ली कि मेरे पास सत्य-संकल्प सिद्धि आ गयी। अरे भाई ! इतने में ही संतुष्ट हो गये ? साधना में रुक गये ?

सितारों से आगे जहाँ कुछ और है।
इश्क के इम्तीहाँ कुछ और हैं।।

आगे बढ़ो। यह तो केवल शुरूआत है। थोड़ी सी संसार की लोलुपता कम होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होता है तो कुछ-कुछ आपके संकल्प फलित होते हैं। संकल्प फलित हुआ और उसके भोग में आप पड़ गये तो आप प्रेम में पड़ जायेंगे। अगर संकल्प-फल के भोग में नहीं पड़े और परमात्मा को ही चाहा तो आप प्रेम से चढ़ जाओगे। प्रेम में पड़ना एक बात है और प्रेम में चढ़ना कोई निराली ही बात है।

थोड़ी बहुत साधना करने से पुण्य बढ़ते हैं, सुविधाएँ आ जाती है, जो नहीं बुलाते थे वे बुलाने लगेंगे, किन्तु मनुष्य जन्म केवल इसीलिए नहीं है कि लोग मान से देखने लग जाएँ। जिसको वे देखेंगे वह (देह) भी तो स्मशान में जलकर खाक हो जायेगा भाई ! मनुष्य जन्म इसलिए भी नहीं है कि बढ़िया मकान मिल जाय रहने को।

'हमें तो ठाठ से रहना है.....।'

यह तो अहंकार पोसने की बात है। न ठाठ से रहना ठीक है न बाट से रहना ठीक है, जिससे रहने का विचार उत्पन्न होता है वह अन्तःकरण जिससे संचालित होता है उस तत्त्व को अपने आत्मा के रूप में जानना अर्थात् आत्म-साक्षात्कार करना ही ठीक है, बाकी सब मन की कल्पना है। स्वामी रामतीर्थ ने बहुत बढ़िया बात कही। वे बोलते हैं-

कोई हाल मस्त, कोई माल मस्त, कोई तूती मैना सूए में।
कोई खान मस्त, पहरान मस्त, कोई राग रागिनी दोहे में।।
कोई अमल मस्त, कोई रमल मस्त, कोई शतरंज चौपड़ जूए में।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त, सब पड़े अविद्या कूए में।।
कोई अकल मस्त, कोई शक्ल मस्त, कोई चंचलताई हांसी में।
कोई वेद मस्त, कितेब मस्त, कोई मक्के में कोई काशी में।।
कोई ग्राम मस्त, कोई धाम मस्त, कोई सेवक में कोई दासी में।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त, सब बंधे अविद्या फाँसी में।।

कोई पाठ मस्त, कोई ठाट मस्त, कोई भैरों में, कोई काली में।
कोई ग्रंथ मस्त, कोई पन्थ मस्त, कोई श्वेत पीतरंग लाली में।।
कोई काम मस्त, कोई खाम मस्त, कोई पूरन में, कोई खाली में।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बंधे अविद्या जाली में।।
कोई हाट मस्त, कोई घाट मस्त, कोई बन पर्वत ऊजारा[1] में।
कोई जात मस्त, कोई धर्म मस्त, कोई मसजिद ठाकुरद्वारा में।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त, सब बहे अविद्या धारा में।।
कोई साक[2] मस्त, कोई खाक मस्त, कोई खासे में कोई मलमल में।
कोई योग मस्त, कोई भोग मस्त, कोई स्थिति में, कोई चलचल में।।
कोई ऋद्धि मस्त, कोई सिद्धि मस्त, कोई लेन देन की कलकल में।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त, सब फँसे अविद्या दलदल में।।
कोई ऊर्ध्व मस्त, कोई अधः मस्त, कोई बाहर में कोई अंतर में।
कोई देश मस्त, विदेश मस्त, कोई औषध में, कोई मन्तर में।।
कोई आप मस्त, कोई ताप मस्त, कोई नाटक चेटक तन्तर में।
इक खुद मस्ती बिन, और मस्त, सब फँसे अविद्या जन्तर में।।
कोई शुष्ट[3] मस्त, कोई तुष्ट[4] मस्त, कोई दीरध में कोई छोटे में।
कोई गुफा मस्त, कोई सुफा मस्त, कोई तूंबे में कोई लोटे मैं।।
कोई ज्ञान मस्त, कोई ध्यान मस्त, कोई असली में कोई खोटे में।
इक खुद मस्ती बिन, और मस्त, सब रहे अविद्या टोटे में।।

1 उजाड़ बियावान 2 रिश्तेदारी 3 खाली 4 प्रसन्नचित्त

ऐसा रहने का हो, ऐसा खाने का हो, ऐसी इज्जत-आबरू हो ऐसा जीवन हो तो मजा है। I am very happy. I am very lucky.

अगले जन्म या इस जन्म का थोड़ा बहुत ध्यान-भजन-जप-तप-पुण्य, जाने अनजाने कोई एकाग्रता फली है तो आप जरा सा सुखी हैं, ऐहिक जगत में सामान्य जीवन जीनेवालों से आपका जीवन थोड़ा ऐश-आरामवाला होगा, जरा ठीक होगा। इसमें अगर आप सन्तुष्ट होकर बैठ गये, जीवन की सार्थकता समझकर बैठ गये तो आप अपने पैर पर कुल्हाड़ा मार रहे हैं, आप कृष्ण का वरण नहीं करना चाहते हैं।

रुक्मिणी के पास राजा की रानी होने का जीवन सामने था। शिशुपाल जैसे राजा थे जो शिशुओं के, बच्चों के पालन-पोषण में लगे रहें, स्त्री का आज्ञा मानें, स्त्री के लिए छटपटायें ऐसे कामुक लोग रुक्मिणी को मिल रहे थे। प्रेम में पड़ने के लिए उसके पास पूरा माहौल था। लेकिन रुक्मिणी जी प्रेम में नहीं पड़ी। वह प्रेम में चढ़ना चाहती थी।

ऐसे ही तुम्हारी बुद्धिमाती रुक्मिणी संसार की सुविधाओं में अगर तन्मय हो जाती है तो वह रुक्मिणी शिशुपाल के हाथ चली जायगी।

अगर वह बुद्धिरूपी रुक्मिणी कृष्ण को ही वरना चाहती है, आत्मा को ही वरना चाहती है तो फिर ब्रह्मवेत्ता को खोजेगी, छुपकर पत्र देगी। बुद्धि हृदयपूर्वक प्रार्थना करेगी और ब्रह्मवेत्तारूपी ब्राह्मण को पत्र देगी किः 'हे गुरू महाराज ! मुझे तो चारों ओर से गिराने वाले, घसीटने वाले हैं। आप मेरा सन्देशा पहुँचा दो। मुझे भगवान ही वरें, और कोई न वरे। मैं भगवान के योग्य हूँ और भगवान मेरे लिये योग्य वर हैं।

सच पूछो तो प्राणीमात्र का योग्य वर तो परमात्मा है, बाकी सब गुड्डा-गुड्डी है।

रुक्मिणी का दूसरा अर्थ है प्रकृति। प्रकृति का योग्य वर तो पुरूष ही है।

प्रकृति के देह को जब हम 'मैं' मानते हैं तो हम सब दाढ़ी-मूँछवाले रूक्मिणी हैं। कोई दाढ़ी-मूँछवाली रुक्मिणी तो कोई कम दाढ़ी-मूँछवाली रुक्मिणी तो कोई बिना दाढ़ी-मूँछवाली रुक्मिणी तो कोई चूड़ियों वाली रुक्मिणी। हम लोग सब रुक्मिणी हैं अगर प्राकृतिक शरीर को 'मैं' मानकर प्राकृतिक पदार्थ पर ही आधारित रहते हैं तो।

रुक्मिणी को अगर बुद्धि की जगह पर रखें तो जिसकी बुद्धि संसार का सुख चाहती है वह प्रेम में पड़ती है और जिसकी बुद्धि आत्मसुख चाहती है, शुद्ध सुख चाहती है वह रुक्मिणी कृष्ण को वरती है।

अब, हमारी रुक्मिणी कहाँ है ? हमारी बुद्धिरूपी रुक्मिणी सुख-सुविधाओं में तन्मय हो जाती है कि सुखों को नश्वर समझकर, सापेक्ष समझकर, कल्पित समझकर सत्य की खोज करना चाहती है ?

बुद्धि अगर सूक्ष्म है तो सत्य की खोज करेगी। उसमें विवेक-वैराग्य होगा, मोक्ष की इच्छा होगी। अगर बुद्धि सूक्ष्म है तो आत्म विचार करना चाहिए। बुद्धि आत्म-ध्यान के भी योग्य नहीं है, सूक्ष्म नहीं है, पवित्र नहीं है तो फिर भी भगवान के गुणानुवाद गाते हुए श्रीमद् भगवद गीता, श्रीमद् भागवत आदि ग्रन्थों का पारायण करना चाहिए, अवलोकन करना चाहिए। अगर उन ग्रंथों को भी नहीं समझ सकते हैं तो कथा और सत्संग के द्वारा बुद्धि को सूक्ष्म बनाना चाहिए ताकि यह बुद्धिरूपी रुक्मिणी कृष्ण को ही वरे और कृष्ण आकर रुक्मिणी का हाथ पकड़कर अपनी बना लें।

अपनी बुद्धिरूपी रुक्मिणी को ब्रह्मरूपी कृष्ण हाथ पकड़कर अपनी बना लें। जब परमात्मा तुम्हारी बुद्धि को अपनी बना लेंगे तो वह तुम्हारी बुद्धि मन की दासी नहीं बनेगी, इन्द्रियों की गुलाम नहीं बनेगी। जो बुद्धि मन की दासी या इन्द्रियों को गुलाम नहीं बनती। उस बुद्धि बाई के आगे मन-इन्द्रिया आज्ञाकारी चाकर हो जाते हैं। सारे सुख-सुविधाएँ उसके आगे मँडराते हैं। बुद्धि उसका यथायोग्य थोड़ा-बहुत उपयोग करके बाकी का समय बचाकर अपने ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण में खेलने लगती है।

श्रीकृष्ण जब रुक्मिणी का हाथ पकड़ लेते हैं तब एक तेजपुञ्ज प्राप्त होता है। श्रीमद् भागवत की कथा कहती है कि रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण को प्राप्त हुई तब समय पाकर तेजस्वी पुत्र प्रद्युम्न का जन्म हुआ। साधक की बुद्धि को जब परमात्मा पकड़ लेते हैं तब बुद्धि में निर्मल तेज प्रकट होता है।

सच्चे भक्तो को सोचने की फुरसत नहीं होती कि लोग क्या कहेंगे। जो लोग अधिक वाचाल होते हैं, अधिक बोलते हैं, चें.....चें, करते रहते हैं वे आध्यात्मिक मार्ग में जल्दी से सफल नहीं होते। रुक्मिणी पत्र में लिखती है कि मैं अपने कुल देवी के दर्शन करने जाऊँगी, व्रत रखूँगी और हे नाथ ! गाँव के बाहर कुलदेवी के मंदिर में जाते समय आप मेरा हाथ पकड़ लेना।

ऐसे ही हम साधक अपने व्यवहार, अपने मोह-ममता में सम्बन्धों से परे, कुछ दूरी पर चले जायें और आराधना, उपासना करें उस समय हे देव ! हे परब्रह्म परमात्मा ! हमारी बुद्धिरूपी रुक्मिणी का हाथ पकड़ोगे तो आसानी हो जायेगी।

आप लोग आज घर-बार सब छोड़कर, शहर से दूर आश्रम में आये हो तो अभी तुम्हारी बुद्धिरूपी रुक्मिणी श्रीकृष्ण से मिलने में सुविधा का अनुभव करेगी। अगर भीड़-भड़ाके में यह कथा हो या इसकी केसेट सुन लो तो वह मजा नहीं आयेगा जो अभी आ रहा है।

इसलिए साधक को चाहिए कि कभी ऐसा समय निकालकर रुक्मिणी की तरह कुटुम्ब-परिवार से थोड़ा समय अलग होकर एकांत में निर्जन जगह पर जाए।

रुक्मिणी पूजा की थाली लिये जा रही है। उसकी दृष्टि नासाग्र दृष्टि है। बीच में भाई रुक्मि आता है, दूसरे लोग आते हैं तो उनसे अगर बात करनी पड़ती है तो संक्षेप में ही बात करके मंदिर की ओर आगे बढ़ती है।

बाहर से तो हाथ में पूजा की थाली है और मंदिर की तरफ आगे बढ़ रही है पर भीतर से जिज्ञासा में ऐसी तीव्रता है कि हृदयमंदिर का स्वामी कहाँ से आयेगा.... कैसे बुलाएगा.... कैसे उठायेगा !! रुक्मिणी के हृदय में बड़ी उत्सुकता है।

जीव जब ईश्वर को आमंत्रित करता है तब ईश्वर उसका हाथ पकड़ते हैं। नहीं तो चलो, खेलते हो तो खेलो।

श्रीकृष्ण ने जब रुक्मिणी के प्रार्थना-पत्र के अनुसार रुक्मिणी को स्वीकार किया तब रुक्मिणी का भाई रुक्मि तथा अन्य लोग आये। वे लोग उद्विग्न हुए। रास्ते में विरोध करने आये। रुक्मि के हथियार भगवान ने नष्ट कर दिये। वह खड्ग लेकर आया तो उसको भी ठिकाने लगा दिया। भगवान उसको सजा देने जाने लगे, वध करने जाने लगे। रुक्मिणी के चेहरे पर देखा तो वह ढीला-ढाला हो रहा था।

भक्त कैसा भी हो, जब वह परिवार के तरफ देखता है तो भक्त का हृदय भी ढीला-ढाला हो जाता है।

वहाँ बलराम रुक्मिणी को समझाते हैं कि तुमने किसको वरा है। तेरा तो स्वामी परमात्मा है, फिर कुटुम्ब के मोह में गिरती है ?

बलराम रामावतार लक्ष्मण रूप थे और कृष्णावतार में बलराम रूप थे। वे शेषावतार हैं। 'नेति....नेति...' करके जो बच जाय वह शेष। शेष ने न रासलीला में भाग में लिया न महाभारत के संग्राम में भाग लिया। क्योंकि शेष जो ठहरे, उपराम। शेष भोला-भाला, सीधा-सादा। शेष श्रीकृष्ण की अपेक्षा थोड़ा सा अपने ढंग का था।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के भाई रुक्मि को बाँध दिया। उसके बाल काट दिये। दाढ़ी-मूँछ का मुंडन कर दिया। उस जमाने में दाढ़ी-मूँछ बिना के लोगों की मश्करी होती थी। उससे बचने के लिए लोग मरना पसंद करते थे लेकिन दाढ़ी-मूँछ के रहना पसन्द नहीं करते थे। रुक्मि अपने नगर नहीं गया। अपना दूसरा गाँव भोजकट बसा लिया।

ऐसे ही तुम्हारी बुद्धिरूपी रुक्मिणी जब भगवान को वरण करने जाती है तो अहंकार रूपी रुक्मि बीच में विघ्न करता है। उसको जब भगवान मारने को उद्यत होते हैं तब आपको लगता है कि भगवान मुझे मिले तो सही लेकिन मेरा Ego (अहं) न मरे। अहं नहीं मरे तो भगवान उसकी दाढ़ी-मूँछ काटकर संन्यासी बना देते हैं। संन्यासी अपने गाँव में, अपने परिवार में, अपने घर में नहीं रहते। फिर नया मठ-मंदिर-आश्रम बसाते हैं।

भगवान की कथा से तत्त्वज्ञान समझने योग्य है।

ब्रह्म और बुद्धि का जब मिलन होता है तब एक तेजपुंज साधक के जीवन में प्रकट होता है। उस तेज को अगर ठीक न सँभाला तो तेज फिर प्रेम में पड़ जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गये और समय पाकर बड़ा तेजस्वी पुत्र प्रद्युम्न का जन्म हुआ।

शंबरासुर प्रद्युम्न को चुराकर समुद्र में डाल देता है। समुद्र में मछली प्रद्युम्न को निगल जाती है। राजा का मछुआ मछली पकड़कर रसोईघर में देता है। रसोई बनानेवाली महिला मायावती जब मछली को चीरती है तो कोई सुन्दर बालक ! बड़ा तेजस्वी! उसको देखकर उसका मन मोहित हो गयाः "तुम तो साक्षात् कामदेव हो और मैं आपकी पत्नी रति हूँ।"

रति ने उसको महामायारुपी विद्या सिखायी। उस विद्या के बल से प्रद्युम्न ने शंबरासुर का विनाश कर दिया। फिर रति के साथ आकाश मार्ग से जाकर अपने माता-पिता से मिले। रुक्मिणी ने अपने बेटे और बहू को पहचान लिया।

यह कथा दूसरी एक कथा से जुड़ी है। भगवान शिव जब आत्मरमण कर रहे थे, निष्कलंक नारायण तत्त्व में समाधिस्थ थे तब कामदे ने शिवजी को बाण मारा। शिवजी निर्विकल्प तत्त्व में थे। वहाँ वासना का बाण असर नहीं करता। कामदेव ने दो-तीन बार प्रयास किया। शिवजी क समाधी खुली। उन्होंने तीसरा नेत्र खोला तो कामदेव जलकर भस्म हो गये। काम की पत्नी रति रोती-रोती आयीः

"मेरे पति भस्म हो गये अब मेरा क्या होगा ?"

पति मर गये उसकी चिन्ता पत्नी को नहीं होती। मेरा क्या होगा इसी बात से चिन्तित होकर रोती है।

जो आत्मारामी हैं भगवान साम्ब सदाशिव, त्रिनेत्रधारी, उनका कोप कोई अज्ञानियों की तरह नहीं होता। वह तो आ गया था क्षणभर के लिए, बहते हुए पानी में लकीर जैसा। नाराज हो गये तो भस्म कर दिया। फिर रति ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की तो राजी हो गये। बोलेः

"तेरा पति कामदेव अब अव्यक्त रूप में रहेगा।"

"प्रभो ! वे अव्यक्त तो रहेंगे लेकिन मैं पति को कैसे पाऊँ ?"

"वही कृष्णावतार में कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न होकर आयेगा और तुझे मिलेगा।"

यह वरदान भी सच्चा हो गया। परमात्मा की लीला, परमात्मा की शक्तियाँ, कलाएँ जिसमें जितनी विकसित होती हैं उतना ही उनका संकल्प विकसित होता है ऐसी फिर व्यवस्था हो जाती है।

देश के संसद के लोग या राज्य की विधानसभा के लोग जो कुछ कायदा-कानून बनाते हैं उसके मुताबिक व्यवस्था हो जाती हैं। लौकिक सरकार के बनाये हुए कायदे देशभर में फैल जाते हैं ऐसे ही सरकारों की भी जो सरकार है, जिनमें कलाएँ विकसित हुई हैं ऐसे भगवान शिव, भगवान कृष्ण या भगवान के परम प्यारे ब्रह्मवेत्ता, संत महापुरूष लोग जो संकल्प करते हैं, देर-सवेर उसके मुताबिक घटना घटती है।

स्वायंभुव मनु के युग में सुतपा प्रजापति थे, पृष्णी उनकी पत्नी थी। ब्रह्माजी ने सृष्टि बढ़ाने का संकल्प किया और पति-पत्नी को आशीर्वाद दिया कि प्रजा का विकास हो ऐसा कुछ करो। वे तप करने लगे।

देवकी के घर जब कृष्ण प्रकट हुए तो पहले चतुर्भुज रूप में जेल में भगवान ने दर्शन दियाः "हे माता ! हे वसुदेव ! मैंने तुम्हें वचन दिया था। तुमने मन्वन्तर के प्रारंभ में अपना जीवन सादा-सीधा, संयम से गुजारा था। गर्मी सहने में तुम पीछे नहीं हटे। सर्दी भी तुम पचा लेते थे। भूख-प्यास को भी पचा लेते थे, मान अपमान को भी पचा लेते थे। जैसे अनन्त-अनन्त सृष्टियों की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है, प्रलय होता है, आँधी तूफान आते-जाते हैं, उन सबको ब्रह्म पचा लेता है, जैसे आकाश सब कोलाहल को अपने में पचा लेता है और ऐसे ही हे पिता माता ! आपने सब कुछ पचा लिया था और आपकी ऐसी दिव्य योग्यता हुई कि देवों के बारह हजार वर्ष आपने वैसी उग्र तपस्या की। उस समय तुम्हारा मन हमेशा मुझमें डूबा रहता था। मैं तुम पर प्रसन्न होकर वरदान देने आया तो मेरी योगमाया ने आपकी बुद्धि को, आपकी रुक्मिणी को मेरे सगुण अवतार की तरफ आकर्षित कर दिया। मेरे स्वरूप में विश्रांति पाकर मुक्ति के बजाय तुमने मुझे अपने पुत्र रूप में माँगा। तो तुम्हारे तप, तुम्हारी सहनशक्ति, तुम्हारी सच्चाई, तुम्हारे परदुःख कातरता के स्वभाव और तुम्हारे ध्यान-भजन और एकान्त चिन्तन ने

मुझे इतना प्रसन्न किया कि मैंने कहाः मैं एक बार नहीं, तीन-तीन बार तुम्हारा बेटा होऊँगा, तुम संकोच मत करो।

हे माता ! तू जब पृष्णी और पिता सुतपा नाम के थे उस समय सतयुग में मैं अवतरति हुआ तो मैंने पृष्णीगर्भ नाम धारण किया था। फिर तुम अदिति और कश्यप बने थे तब मैं उपेन्द्र नाम से वामन भगवान होकर आया था। अभी तुम देवकी और वसुदेव बने हो और मैं श्रीकृष्ण बन कर आ रहा हूँ। यह मेरा चतुर्भुज रूप मैं इसलिए दिखा रहा हूँ कि तुम मानो कि मैंने जो वरदान दिया था उसके मुताबिक तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारा प्रेम संपादन करने आया हूँ और यह तुम्हारा आखिरी जन्म है। फिर तुम मेरे लोक को प्राप्त होगे।"

ऐसा कहकर भगवान नन्हें मुन्ने बाल-गोपाल हो गये।

भगवान वह है जो अन्धकार में प्रकाश कर दे, बन्धे हुए को छुड़ा दे, हारे हुए को आश्वासन दे दे, गिरे हुए को उठा ले, सदाचारी की सतचेतना को बढ़ा दे और दुराचारी को भी मिलने में इन्कार न करे। यह भगवान का भगवतत्त्व है।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूपी नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भली-भाँति तर जायेगा।'

(भगवद् गीताः 4.36)

भूतकाल में कैसा भी पाप हो गया हो, दुराचार हो गया हो, उस पाप और दुराचार को तथा उसके चिंतन को छोड़कर अगर तुम्हारी मतिरूपी रुक्मिणी अभी कृष्ण को वरना चाहती है तो श्रीकृष्ण सारे विघ्न-बाधाओं को चीरते हुए तुम्हारा हाथ पकड़ लेते हैं। तुम्हारी मति जब भगवान की हो जाती है तब तेजपुंजरूपी बालक का जन्म होता है, सामर्थ्य का जन्म होता है। उसको फिर इच्छा-वासनारूपी राक्षस ले जाता है और संसार समुद्र में फेंकता है। वहाँ कोई मछली अर्थात् कोई मान्यता उसे निगल जाती है। जैसे, 'मैं जगत का सुधार करूँगा.... इस्लाम खतरे में है उसे निकालूँगा..... धर्म कहीं फँस गया है उसे निकालूँगा.... उसको ऐसे करूँगा वैसे करूँगा....।'

बुद्धि जब ईश्वर को मिलने के करीब होती है तो जो प्रभाव और तेज आता है उसकी अगर सुरक्षा नहीं की तो उसको जरा चक्कर में पड़ना पड़ता है।

रुक्मिणी अपने पुत्र-पुत्रवधू को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई। समय बीतता चला गया।

अभी प्रारंभ में आये हुए श्लोक की भूमिका बन रही है।

ऐसा कोई कार्य नहीं जिसमें श्रीकृष्ण पीछे रहे हों। युद्ध में भी उनका पहला नंबर और रणमैदान छोड़कर भागने में भी उनका पहला नंबर। शिष्य बनने में पहला नंबर और गुरू बनने में पहला नंबर। 'बारह साल व्रत रखो, उपवास करो, नियम करो फिर उपदेश मिलेगा, ज्ञान मिलेगा.....' ऐसा नहीं। युद्ध के मैदान में भी अगर जरूरी है तो उपदेश चालू। नहीं तो ब्रह्मविद्या

का उपदेश ? परंपरा तो यह है कि विवेक हो, वैराग्य हो, षटसंपत्ति हो, मोक्ष की तीव्र इच्छा हो, वह अधिकारी है। उसके आगे आत्मज्ञान का उपदेश करना चाहिए। सोलह कला के पूर्णावतार में भगवान कभी-कभी इस सामान्य नियम को किनारे रख देते हैं। सामान्य नियम देश, काल, व्यक्ति के लिए है और जो देशातीत है, कालातीत है, व्यक्तित्व से परे है ऐसे पूर्णावतार के लिए ये नियम नन्हें हो जाते हैं।

कभी-कभी समाज का हित होता है तो अपना नियम तोड़ देना पड़ता है। अपना कोई छोटा-मोटा प्रण बहुजनहिताय बहुजनसुखाय वापस ले लेना पड़ता है। ऐसा करने में भगवान पीछे नहीं हटे हैं। वे रण छोड़कर भागे हैं तो भी 'रणछोड़राय की जय....!' भागते समय हृदय में कायरता नही लेकिन यहाँ भागना व्यवस्था के अनुकूल है, वरदानों के अनुकूल है तो भागने में भी पीछे नहीं रहे। वे किसी भी काम में पीछे नहीं रहे।

गुरू देखो तो श्रीकृष्ण अव्वल नंबर के और शिष्य देखो तो आहाहा.....! सांदीपनि ऋषि के आश्रम में और घोर आंगिरस मुनि के पास भगवान ब्रह्मविद्या की चर्चा सुनते हैं या मनन करते हैं तब पूरा शिष्यत्व निभाते हैं। गुरू का हृदय तो जीत लेते हैं, गुरूपत्नी की सेवा करके भी उनका आशीर्वाद पाने में पीछे नहीं हटते हैं।

खेलकूद में भी श्रीकृष्ण अव्वल नंबर। कभी गोपी की चोटी खींचकर भी उसका मन अपने तत्त्व की तरफ आकर्षित करना तो कभी गायों के बछड़े खोलकर भी उन निर्दोष बछड़ों को पोषण देना और अहंकारी, प्रजा-शोषक कंस के दूध-मक्खन में गड़बड़ कर देना।

उपदेशकों में भी श्रीकृष्ण अव्वल नंबर और प्रेमाभक्ति में भी अव्वल नंबर। प्रेम की नजर से निहारते हुए जरा-सी बँसी फूँक देते हैं तो लोगों के हृदय पुलकित हो जाते हैं।

संसारी लोग पत्नी आती है तब प्रेम में पड़ जाते हैं ऐसे श्रीकृष्ण अगर प्रेम में पड़े होते तो शिशुपाल ने उन्हें व्यभिचारी कहा होता। शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को सौ-सौ गालियाँ दी पर उन्हें व्यभिचारी नहीं कहा, यह गाली नहीं दी। अगर वे कामासक्त हुए होते तो ऐसी गाली देने में शिशुपाल क्यों रुकता ? उसने यह नहीं कहा कि तुम दुराचारी हो, व्यभिचारी हो।

श्रीकृष्ण प्रेम में पड़े नहीं हैं लेकिन प्रेम में पड़े हुए लोगों को उठाया है। इसीलिए भगवान पूर्णावतार हैं।

प्रेम में पड़े वह जीव। प्रेम में तरे वह साधक और प्रेम में तारे वह सिद्ध।

रुक्मिणी भगवान के प्रेम में चढ़ना चाहती थी। जीव का स्वभाव है कि प्रेम में चढ़ते-चढ़ते कभी प्रेम में पड़ भी जाता है। रुक्मिणी के मन में हुआ कि मैं कितनी गोरी हूँ ! कितनी सुन्दर हूँ !

भगवान रुक्मिणी के मनोभावों को समझ गये। जीव की और कोई अंगड़ाई हो तो ईश्वर सह लेते हैं लेकिन जीव का अहंकार ईश्वर नहीं सहते, गुरू नहीं सहते। अहंकार बड़ी बाधा है।

रुक्मिणी के अहंकार को निवृत्त करने के लिए श्रीकृष्ण बात बात में रुक्मिणी को कहते हैं- "हमारा कजोड़ा हुआ है। तू गौरवर्ण है, सुन्दर है और मैं सांवला हूँ, श्यामवर्ण हूँ। कहाँ तू राजकन्या और कहाँ हम चरवाहे ! बचपन में गायें चराने का धंधा किया। युवावस्था में रथ चलाया। जरासंध आदि राजाओं से भय पाकर द्वारिका जा बसे और हमारी नगरी का मार्ग कोई जानता ही नहीं। हम ऐसी नगरी में बसे हैं।

तुम तो विदर्भनरेश भीष्मक की पुत्री, रुक्मि की बहन, तुम्हारे लिए शिशुपाल और दूसरे भोगी राजा तैयार थे। हमारे पास तो भोग के साधन भी नहीं और हमें भोग की रुचि भी नहीं। हम तो आत्मरस में तृप्त रहने वाले हैं। पुत्र में, परिवार में उदासीन रहने वाले हैं। ऐसे हमारे जैसे को वरकर तुमने बड़ी गलती की।" यहाँ श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं-

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यापत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहज्योतिरक्रियाः।।

'निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, संतान और धन लोलुप नहीं हैं। निष्क्रिय और देह-गेह से सम्बन्धरहित हैं। दीपशिखा के समान साक्षी मात्र हैं। हम अपने आत्मा के साक्षात्कार से ही पूर्णकाम हैं।'

"हम प्रेम में पड़ने वाले नहीं हैं। तुमने हमारा वरण करने में जरा जल्दबाजी कर लिया। खैर, अभी भी कोई बात बीती नहीं। अभी अपने योग्य किसी राजा को तुम वर सकती हो।"

जीव के भीतर कोई बात छुपी हुई होती है तो उसे ऐसी वैसी बात कहकर उसके अन्तःकरण से बात निकालने के लिए ईश्वर और गुरू ऐसी लीला किया करते हैं।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को जब यह बात कही तो वह बेहोश हो गई। वह भगवान की भक्त तो थी ही। पवित्र बुद्धि को थोड़ा सा भी कह दो तो वह सचेत हो जाती है। रुक्मिणी भगवान को पंखा झलते-झलते बेहोश हो गई तो भगवान पलंग से नीचे उतरे और अपने पीतांबर से रुक्मिणी को पंखा झलने लगे, मुँह पर पानी छिड़का। उसे जगाने लगेः

"ऐ रुक्मिणी ! रुक्मिणी ! तू क्या करती है ? गृहस्थ जीवन में कभी-कभी विनोद, आनन्द-प्रमोद करने के लिए ऐसी बातचीत होती है। तेरे अंतर के भावों को निहारने के लिए और विनोद के लिए मैंने ऐसा कहा। तेरा मेरे प्रति कितना स्नेह है, मैं जानता हूँ। तू धन्य है। तेरे लिए इतनी-इतनी सुख-सुविधाएँ थी, राजसुख था, तुझे वरण करने के लिए इतने राजा उत्सुक थे फिर भी तूने मेरा वरण किया, तुझे धन्यवाद है। मैं तुझे पहचानता हूँ। इसीलिए तो मैं भागा-भागा तेरा हाथ पकड़ने को आया था। रुक्मिणी ! मैंने तो यह विनोद मात्र किया था। तू सच्चा समझकर बेहोश हो गई ? यह सारा संसार विनोद मात्र है और मेरी इस बात को सच्ची समझकर तू बेहोश होती है ? हे रुक्मिणी ! तू अपने होश में आ जा।"

अर्थात् हे बुद्धि ! तू अपने शुद्ध होश में आ जा। संसार की बातों में बेहोश मत हो।

तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी रुक्मिणी होश में आ जाय ऐसी श्रीकृष्ण की और सदगुरूओं की इच्छा है।

रुक्मिणी सचेत हुई। जाग्रत होकर भगवान से बोलीः

"स्वामी ! आप जो कहते हैं वह बिल्कुल यथार्थ कहते हैं। हमारा कजोड़ा हुआ है। कहाँ तो मैं हाड़-मांस की देह में रमण करने वाली और कहाँ आप आत्मारामी..... निष्कलंक निजानन्द में रमण करने वाले ? आप कहते हैं कि हमारे नगर का रास्ता कोई नहीं जानता। हे प्रभु ! आप अंतर्यामी सर्व नियंता हैं और हृदय-गुहा में रहते हैं। इसलिए रजोगुणी तमोगुणी राजा और मोहपाश में बंधे हुए जीव आपके गाँव का मार्ग नहीं जानते हैं। कोई विरला जिज्ञासु गुरू प्रसाद से आपके गाँव पहुँचने का प्रयास करता है तब द्वारका से निकलकर कृपा करके उसका हाथ पकड़ते हो तभी मुलाकात होती है। आपने यथार्थ कहा है देव !

आपका हमारा कजोड़ा हुआ है इसमें दूसरी बात यह है कि हे प्रभु ! मैं मति, छोटी-छोटी बातों में उलझने वाली और आप मति के साक्षी, अनन्त-अनन्त मतियाँ जिससे प्रकट हो-होकर लीन हो जाय। कहाँ एक बूँद और कहाँ महासागर ! यह तो कजोड़ा ही हुआ है लेकिन आपकी उदारता से सुन्दर जोड़ा बना लिया है तो हे नाथ ! यह सजोड़ा बना ही रहे ऐसी कृपा करना।

हे स्वामी ! आपने कहा कि राजा आपका द्रोह करते हैं। हे प्रभु ! आपकी यह बात भी यथार्थ है। जो धन के मद में है, सत्ता के मद में हैं वे सच्चिदानंद परमात्म-रस से विमुख हैं, वे आपका द्रोह करते हैं।

हे नाथ ! आप कहते हैं कि हम एकाकी आत्मारामी हैं। तो आप एकाकी हैं, अनेकों में भी सब आप ही दिखते हैं। अनेक अन्तःकरणों में, अनेक मनों में भी सब आप ही दिखते हैं। अनेक अन्तःकरणों में, अनेक मनों में, अनेक आँखों में आप एकाकी सत् चित् आनन्द स्वरूप देखने वाले हैं। अनेक में आप ही तो हैं। अनेक वृक्षों में रस लेने की सत्ता आप हैं, अनेक पक्षियों में किलोल करने की सत्ता आप हैं। अनेक आँखों में देखने की सत्ता आप ही की है। अनेक मनों में संकल्प-विकल्प के साक्षी आप हैं। अनेक बुद्धियों के उदभवस्थान आप हैं। अनेक सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आधारभूत अधिष्ठान आप हैं। इसलिए आप एकाकी हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा था कि हम तो उदासीन हैं। स्त्री, पुत्र-परिवार, धन आदि से अनासक्त हैं।

साधक को चाहिए की वह स्त्री का पालन पोषण तो करे, बच्चों को ठीक से देखभाल, पढ़ाई-लिखाई करे, करवाय मगर भीतर से उदासीन भी रहे। उद्=ऊँचा अर्थात् परमात्मा। उस परमात्मा में आसीन हुआ करे।

जब साधक की मति उदासीन होगी, परमात्मा में आसीन होगी तब उसकी मति से पुकार होगी किः "हे परमात्मा ! मैं तो तुझे ही वरू, तुझे ही पाऊँ।"

भगवान कहते हैं- "हे रुक्मिणी ! मैं तुझे वरदान देता हूँ। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है 'वरदान'। वर माना अभीष्ट। अभीष्ट का दान = वरदान। मैं तुझे वरदान देता हूँ और वरदान में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ होता है अपने आपको दे डालना। मैं तुझे अपने आपका ही दान दे डालता हूँ।"

श्रीकृष्ण की राजनीति से और श्रीकृष्ण के व्यवहार से भारत ने अगर ठीक से प्रेरणा पा ली होती तो अभी 41 साल में विश्वभर की महान् सत्ताओं में पहला नंबर होता अपने भारत देश का। श्रीकृष्ण का जीवन ऐसा था। हम लोगों ने क्या किया ? कृष्ण कन्हैये को मक्खन धर दियाः "कृष्ण कन्हैया की जय.....।" फिर मक्खन बाँटा तो जो अपना कीका है उधर हाथ ज्यादा गया, पड़ोसी के कीके की तरफ हाथ कम गया। 'हम भगत हैं' ऐसा कहलाने की लालच हो गई। हम 'उदासीन' नहीं हुए, आसक्त हो गये। माया में पड़ गये।

तुलसीदास जी महाराज कहते हैं

मोहनिशा सब सोवनहारा।
देखहिं सपने अनेक प्रकारा।।

संयममूर्ति भीष्म

गंगापुत्र भीष्म पितामह गंगाद्वार-हरिद्वार में तप करने गये। तप करते-करते उनका तन कृश हो गया। उनका प्रेम संसार की तरफ न पड़ते हुए ऊपर की ओर उठा, परमात्मा के तरफ गया।

योग साधकों और योगी पुरुषों का अनुभव होता है कि मन और प्राण जब ऊपर के केन्द्रों में होते हैं तब निर्भीक और सत्य-संकल्प के सामर्थ्यवान होने लगते हैं। क्षुद्र आकांक्षाओं से मन और प्राण नीचे के केन्द्रों में रहते हैं। जब काम-वासना होती है तब मन और प्राण नीचे के केन्द्रों में आ जाते हैं। जब आप शुद्ध भाव में होते हो तब ऊपर के केन्द्रों में होते हो।

उपवास आदि मन और प्राण को ऊपर उठाने में सहयोगी हैं। शरीर में दोष न हो तो उपवास से चित्त एकाग्र होता है। अलबत्ता, उपवास यथायोग्य करना चाहिए।

उपवास, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि करके गंगापुत्र भीष्म ने गंगाद्वार-हरिद्वार में तपस्या की। तपस्या का यह मतलब नहीं कि नंगे पैर चलना, पानी उबालकर पीना। तपस्याएँ कई प्रकार की होती हैं- शारीरिक तप, मानसिक तप आदि। सब तपों में श्रेष्ठ तप माना गया है एकाग्रता। श्रीमद् आद्य शंकराचार्य ने कहाः

'मन-इन्द्रियों को संयत करके एकाग्रचित्त होना सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, तब तपों में श्रेष्ठ तप है।

तपः सु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

भीष्म ने एकाग्रतापूर्वक समाधि की। उनका संकल्प था कि भगवान ब्रह्मा जी प्रसन्न हों। संकल्प के अनुसार आपका चित्त जब एकाकार होता है तब जिसके प्रति आपका संकल्प होता है उसको संकल्पपूर्ति के लिए आमंत्रित कर देता है।

भगवान ब्रह्माजी ने अपने मानस पुत्र पुलस्य को बुलाया। आदेश दिया किः "गंगापुत्र गंगाद्वार में तप कर रहे हैं। उनकी सब मनोकामना पूर्ण करने का वरदान दे आओ। वे जो चाहते हैं वह जाकर दे आओ।"

आकाश मार्ग से महातेजवान भगवान ब्रह्मजी के मानस पुत्र पुलस्त्य ऋषि आये और गंगापुत्र को कहाः

"हमारे पिता ब्रह्माजी आपके तप से खूब प्रसन्न हैं। आप क्या चाहते हैं ?"

तब भीष्म कहते हैं- "हम चाहते हैं कि हमको सत्संग मिल जाये।"

जीव के पास धन न हो, सत्ता न हो और उसको तरना हो तो क्या करे? व्रत भी एक बड़ा साधन है, भगवन्नाम का जप भी एक बड़ा साधन है। जीव को जल्दी मोक्ष चाहिए तो वह क्या करे ?

राजनीति के प्रश्न, समाज के उद्धार के प्रश्न और जीव के मुक्त होने के प्रश्न, तमाम प्रकार के प्रश्न भीष्म ने पूछे और सत्संगति की।

यह प्रश्नोत्तर पद्म पुराण में एकत्रित है।

भीष्म की तपस्या से साधकों को प्रकाश मिलता है कि अगर किसी सत्संग में आत्मज्ञान का सूक्ष्म रहस्य मिल जाय, ज्ञान-प्रकाश मिल जाय तो ठीक है, अन्यथा सत्संग प्राप्ति के लिए तप करना चाहिए और तप से संतुष्ट होकर भगवान किसी न किसी अपने संत को भेजकर आपके जीवन में ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं।

सत्संगति से गंगापुत्र भीष्म के जीवन में ऐसा ज्ञान का प्रकाश हो गया कि महाभारत के युद्ध के बाद बावन दिन तक बाणों की शय्या पर रह सके।

भीष्म पितामह जब प्राणों की शय्या पर पड़े थे तब धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के दर्शन करने गये। देखा तो श्रीकृष्ण ध्यानमग्न हैं। युधिष्ठिर चकित हो गये कि त्रिलोकी जिनका ध्यान करती हैं ऐसे पूर्णावतार त्रिलोकीनाथ भगवान श्रीकृष्ण किनका ध्यान कर रहे हैं।

भगवान जब ध्यान से उठे तो युधिष्ठिर बोलेः

"भगवान ! मैं जो पूछने आया हूँ वह तो बाद में पूछ लूँगा पर अब मेरा प्रश्न है कि आप किसका ध्यान कर रहे थे ?"

"मैं ध्यान कर रहा था भीष्म पितामह का। वे अभी बाणों की शय्या पर पड़े हैं और अन्तःकरण पूर्वक मेरा ध्यान कर रहे हैं। हे युधिष्ठिर ! इस समय पृथ्वी पर भीष्म जैसा राजनीतिज्ञ दूसरा कोई नहीं, भीष्म जैसा धर्म-धुरंधर कोई नहीं, भीष्म जैसा वीर कोई क्षत्रिय

नहीं, भीष्म जैसा इस लोक और परलोक के कल्याण के मार्ग का ज्ञाता कोई नहीं। अभी भीष्म का अन्त समय है इसलिए तुम वहाँ चलो और भीष्म से कुछ ज्ञान पा लो।"

श्रीकृष्ण सलाह दे रहे हैं धर्मराज युधिष्ठिर को।

युधिष्ठिर कहने लगे किः "भीष्म पितामह अपने प्रतिपक्ष में थे। हमारे सैन्य ने उन्हें बाणों से बींधा है। हम उनके पास जाएँगे तो कुपित हो जाएँगे। और शाप दे देंगे।"

"नहीं, वे कुपित नहीं होंगे। वे जानते हैं कि जो होने वाला था वही हुआ। वे राग-द्वेष से रहित महापुरूष हैं।"

युद्ध के पहले श्रीकृष्ण संधि-दूत बनकर गये थे। संधि कराने में असफल रहे, क्योंकि जो होने वाला था उस तरतीव्र को कौन रोके ? श्रीकृष्ण को उद्वेग नहीं हुआ कि हाय रे हाय ! मैं असफल हो गया। 'नरो वा कुंजरो वा' के प्रसंग में सफल रहे, महाभारत के युद्ध में सफल हुए तो श्रीकृष्ण को ऐसा नहीं हुआ कि वाह वाह ! हम सफल हो गये।

जीव जरा सी बात में निष्फल होता है तो पंद्रह सोपान गिर जाता है। चार पैसे कमाने में सफल होता है, चार पैसे का फर्नीचर बनाने में सफल हो जाता है, जीवन में अगर चार कमरे बना लेता है तो बड़े-बड़े लोगों को उदघाटन में बुलाकर दिखाता है कि मैंने यह सब बनाया है। वास्तुपूजा में जिनको बुलाया है वे मकान से प्रभावित हों और अपना अहं पोषित हो, प्रायः गहराई में यह होता है। यह जीव का स्वभाव है।

श्रीकृष्ण कहते हैं- "भीष्म हार और जीत को, सुख और दुःख को, सफलता और विफलता को नियति मानते हैं। वे अच्छे धर्म धुरंधर हैं। अतः हे धर्मराज ! तुम चलो, उनसे कुछ जान लो। वे तुम्हें नहीं डाँटेंगे, कुछ नहीं कहेंगे।"

दोनों भीष्म के पास पहुँचे। भीष्म ने श्रीकृष्ण को प्रणाम करके कहाः "भगवान ! आप कहते हैं तो धर्मराज को उपदेश दूँगा। किन्तु मैं अभी बाणों की शय्या पर पड़ा हूँ। मैंने इस जन्म में तो ऐसा कोई पाप नहीं किया। मैं यह भी जानता हूँ कि कोई किसी के सुख और दुःख का दाता नहीं। अपने ही कर्मों का फल मिलता है। आदमी ऐसा कोई दुष्ट काम करता है कि उसे दुःख मिलते हैं। उसी के ही सुकृत सामने वाले के हृदय में स्फुरित होकर सुख देते हैं। अपने ही कर्मों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वही सुख-दुःख होकर आता है फिर भी मैं देखता हूँ कि 73 जन्म में मैंने ऐसा कोई कर्म नहीं किया कि मुझे बाणों की शय्या पर सोना पड़े।

श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोलेः "हे संयममूर्ति भीष्म ! 73 जन्म तक आप ध्यान के द्वारा अपनी स्मृति को ले गये, एक जन्म और पीछे ले जाते तो पता चल जाता। 74वें जन्म में आप किशोर थे। वन में घूमने गये। आक के पत्ते पर बैठी टिड्डी के शरीर में बबूल का शूल चुभाया था। उस क्रूर कर्म का फल घूमते-फिरते अब मिल रहा है।"

छः साल में दुगना, बारह साल में चार गुना, अठारह साल में आठ गुना और चौबीस साल में सोलह गुना - इस प्रकार चक्रवृद्धि सूद के साथ कर्मों का फल मिलता है।

इसलिए कृपानाथ ! आप जब कर्त्ता होकर कर्म करते हैं तो कर्म करने से पहले चार कदम सोच लेना कि, इस कर्म का फल क्या ? इससे क्या चीज मिलेगी ? कब तक टिकेगी ? पाप क्यों करूँ ? सत्कर्म करता हूँ तो इसका फल नश्वर चाहूँ या शाश्वत चाहूँ ? इस प्रकार अगर आपकी बुद्धि में प्रकाश होगा तो आपकी रुक्मिणी कृष्ण-साक्षात्कार का वरदान पचा सकेगी, संसार के प्रेम में नहीं पड़ेगी।

भीष्म ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया। वह महाभारत में शांतिपर्व कहलाता है। वह ज्ञान समझने जैसा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हररायदासजी महाराज और बादशाह

सिक्खों के सातवें गुरू हररायदासजी महाराज ज्ञान में इतने निपुण कि हँसते-हँसते भक्तों के चित्त को पढ़ लेते और हँसते-हँसते उनके प्रश्नों के उत्तर दे देते। बोलने की छटा ऐसी अदभुत कि सुनने वाला कभी ऊबता नहीं। सभा में आखिरी बुद्धि का आदमी और अव्वल बुद्धि का आदमी, दोनों रसपान कर सकें, समझ पायें ऐसा वक्तृत्व उनके पास था। वक्ता की कुशलता यह है कि सभा में जब वह बैठे तो उसकी वाणी के द्वारा, उसके आध्यात्मिक प्रभाव द्वारा सभाजनों का चित्त तदाकार हो जाय। सभा के छोटे से छोटे आदमी को भी कुछ घूँट मिलता जाय, मध्यम को भी मिलता जाय, ऊँचे को भी मिलता जाय और ऊँचे और नीचे, छोटे और मोटे से भी जो पार होने की योग्यता वाले हैं उनको भी रस मिल जाय, यह ब्रह्मवेत्ता वक्ता के वक्तृत्व की कुशलता है। हरराय साहब ऐसे कुशल थे।

एक बार वे भक्तों के बीच अपनी ज्ञानगंगा बहा रहे थे। किसी सूक्ष्म विषय की व्याख्या कर रहे थे, तत्त्वचर्चा कर रहे थे, किसी के प्रश्न का उत्तर दे रहे थे। इतने में तुर्कस्तान का बादशाह वहाँ आया जो उनकी ख्याति सुनकर अपने शंका-समाधान के लिए आया था। देखा कि हररायदासजी की वाणी में कुछ आकर्षण है, कुछ अनुभव है, कुछ सच्चाई है, कुछ रस है। प्रश्नोत्तर समाप्त हुए तो तुर्कनरेश ने हाथ जोड़कर प्रार्थना कीः

"हे संतप्रवर ! मैं आपका नाम सुनकर आया हूँ।" प्रश्नोत्तर होने का मौका पाकर मैं अपने को बड़ा भाग्यवान मानता हूँ। वर्षों से मेरे चित्त को एक प्रश्न सता रहा है। कई मुल्ला-मौलवियों से, उपदेशकों से उसका निराकरण पूछता आया हूँ। आज तक मुझे संतोष नहीं हुआ है। मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला है।

हे संतप्रवर ! हे भगवत्स्वरूप ! आप खुदाताला के खास इन्सान हैं। आप अगर इजाजत दें तो मैं अपना प्रश्न पूछकर अपना दिल हल्का करना चाहता हूँ।

"पूछो.... पूछो, निःसंकोच होकर पूछो।" हररायजी ने कहा।

बादशाह बोलाः "महंमद पैगम्बर हो गये, जुन्नेद हो गये, कई अवतार हिन्दुओं में हो गये, कितने पीर हो गये, कितने फकीर हो गये, कितने पैगम्बर हो गये, कितने जति हो गये, कितने जोगी हो गये। मेरा प्रश्न यह है कि खुदाताला ज्यादा से ज्यादा सिफारिश किसकी मानता है, पीरों की सिफारिश मानता है कि पैगम्बरों की मानता है कि फकीरों की मानता है कि भक्तों की मानता है कि योगियों की मानता है ? अगर पैगम्बरों की मानता है तो उसमें कौन से पैगम्बर की मानता है ? जिसकी ज्यादा से ज्यादा सिफारिश चलती हो उसका नाम बताइये ताकि मैं उसको राजी कर लूँ और अपना काम बना लूँ।"

इस प्रश्न से सभा में सन्नाटा छा गया। हररायजी भी शांत हो गये घड़ीभर और जहाँ भगवान योगेश्वर आत्म-विश्रांति पाते हैं, जहाँ से सारा ज्ञान, सारा प्रकाश, सारा प्रेम और सारे दिव्य गुण स्फुरित होते हैं उस दिव्य स्वरूप में ध्यानस्थ हो गये। फिर कहाः

"भाई भाई ! भगवान किसी पीर पैगम्बर, किसी जाति-सती की सिफारिश से ही मिलें ऐसा कोई जरूरी नहीं। भगवान का घट-घट वास है। हर व्यक्ति जितनी सच्चाई से, उत्साह से, ईमानदारी से उनको पुकारता है, प्यार करता है और उनके लिये जीता है उतना ही वे उसके रास्ते का प्रकाश बढ़ाते जाते हैं और उतना ही वे जल्दी मिलते हैं।

जिसकी जिज्ञासा तीव्र है, जिसकी साधना तीव्र है, जिसकी तत्परता तीव्र है उस साधक को तो संतों के द्वारा भी भगवान प्रकाश देते हैं। अंदर अंतर्यामी होकर भी प्रकाश देते हैं।

किसी की सिफारिश के इन्तजार की तुम्हें जरूरत नहीं। तुम जो व्यवहार करते हो, प्रजा का पालन करते हो तो 'प्रजा के अन्दर छुपे हुए अन्तर्यामी परमात्मा मुझे देख रहे हैं' ऐसा सोचकर काम करो और पुत्र-परिवार से मिलते हो तो....

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विषयेषु च।
निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपि निराशः शोभते बुधः।।

'पुत्र और स्त्री आदिकों में स्नेहरहित और विषयों में कामनारहित और अपने शरीर में चिन्तारहित ज्ञानी निराश होकर ही शोभायमान होता है।'

(अष्टावक्रगीताः 18.84)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।

'इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना (यह ज्ञान है)।'

(भगवद गीताः 13.8)

इन्द्रियों के अर्थ में वैराग्य करो। आँखों को बताओ कि अब कितना-कितना देखोगे ? क्या-क्या देखोगे ? आँखें कैंची जैसी घूमती रहती हैं। भर दिया सब खोपड़ी में, अब क्या देखना है ?

व्यर्थ का देखने से, व्यर्थ का सुनने से बुद्धि स्थूल हो जाती है। इधर-उधर के किस्से कहानियाँ मस्तिष्क में भरकर बुद्धि कूटकर भर जाता है। अगर संयम करेगा तो बुद्धि सूक्ष्म होगी और खुद ही रम रहा है उस खुदा के विषय में तुम्हारी रुक्मिणी (बुद्धि) सोचने लगी। खुदा के गुणों का ज्ञान होगा। फिर गुरूरूपी ब्राह्मण को पत्र देगी और वह अन्तर्यामी कृष्ण इस बुद्धि का हाथ पकड़कर अपनी भार्या बना लेंगे।

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

बुद्धि फिर कृष्ण तत्त्व में, ब्रह्मतत्त्व में प्रतिष्ठित हो जायेगी। सिफारिश चलती है यह प्रश्न नहीं है। कौन से साधक की कितनी तीव्रता है, कितनी ईमानदारी है, कितनी बुद्धि की सूक्ष्मता है यह महत्त्वपूर्म है।

जितनी बुद्धि की सूक्ष्मता होगी, साधना में जितनी तत्परता होगी उतना ही साध्य जल्दी से प्रकट हो जायगा।

आप प्रश्न का ऐसा युक्तियुक्त, शास्त्र-सम्मत और अनुभवसम्पन्न उत्तर सुनकर बादशाह का हृदय धन्यवाद से भर गया। महापुरूष के चरणों में झुक-झुककर प्रणाम किये।

वर्षों तक की मजदूरी से नहीं मिलता वह प्रकाश हँसते-हँसते मिलता है। धन्य है वह सत्संग ! ऐसा सत्संग पाने के लिए भीष्म ने तप किया था।

भीष्म के तप से सिद्ध होता है कि अगर तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म सत्संग न मिले तो ध्यान भजन, जप-तप करके भी आत्मज्ञान का सत्संग पाने का ही यत्न करो, क्योंकि सर्वोपरि आत्मज्ञान है।

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते।
आत्मसुखात् परं सुखं न विद्यते।।

यह अद्वैतज्ञान है। इससे सारे सदगुण पैदा होते हैं। विश्वभर की शंकाओं का समाधान केवल वेदान्त के ज्ञान से ही आता है। विश्वभर के भगवानों, अवतारों, पीर-पैगम्बरों का आधारभूत ज्ञान अद्वैत से ही प्रकाशित हुआ। इसलिए अद्वैतज्ञान, एकात्मवाद का जो प्रकाश है वह जीवन में सुख-शांति देता है। मरने के बाद मुक्ति नहीं, उधारी मुक्ति नहीं, जीते जी अपने शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप का साक्षात्कार करा देता है। इसलिए भगवान यहाँ कहते हैं-

उदासीना वयं नूनं स्न्यापत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः।।

'निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, संतान और धन के लोलुप नहीं हैं। हम निष्क्रिय हैं अर्थात् आत्मा कुछ करता नहीं है, ऐसे हम आत्मा हैं। हम देह-गेह से सम्बन्धरहित हैं। देह और घर से तो ममता का सम्बन्ध है। ममता बढ़ी या कम हुई, उसको हम देखने वाले हैं।'

जैसे भगवान ममता को देखने वाले हैं ऐसे ही अन्तर्यामी रूप में आप भी तो ममता को देखने वाले हैं। आप नाहक ममता से जुड़ जाते हैं कि मेरा घर से सम्बन्ध है, मेरा फैक्ट्री से सम्बन्ध है। तुम्हारा घर से, फैक्ट्री से, ऑफिस से, दुकान से सम्बन्ध नहीं है। अगर तुम्हारा उनसे सच्चा सम्बन्ध होता तो तुम्हारे चले जाने से घर-फैक्ट्री-ऑफिस-दुकान को तुम्हारे साथ ही स्मशान में रवाना कर दिया जाता। तुम्हारा इन चीजों से सम्बन्ध माना हुआ है। परमात्मा के साथ तुम्हारा सम्बन्ध वास्तविक में है।

जो माना हुआ सम्बन्ध है उससे ममता हटाओ। व्यवहार चलाओ और जो सचमुच में सम्बन्ध है उसको जानकर तुम मुक्ति का अनुभव कर लो।

जैसे भागवत के इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणी को अपना अनुभव बताते हैं ऐसे ही एक दिन आप भी अपनी रुक्मिणी को अपना अनुभव बता सकते हो और उसके पड़ोसियों को भी बता सकते हो किः "घर में, पुत्र में, परिवार में हमारी आसक्ति नहीं है, लोलुपता नहीं है। यह शरीर भी हमारा नहीं, उसके सम्बन्ध भी हमारे नहीं। ये माया मात्र हैं। हम तो दीपशिखावत् साक्षी हैं, दृष्टा हैं, असंग हैं, नित्य मुक्त हैं। पहले हमको पता नहीं था, अब सत्संग का प्रकाश हुआ तो पता चला कि हजारों-हजारों जन्म हुए शरीर के, हजारों-हजारों शरीर मर गये फिर भी हम नहीं मरे इसलिए यहाँ हैं। हजारों दुःख आये और गये, हम नहीं गये। हजारों सुख आये, चले गये हम नहीं गये। सैंकड़ों मान के प्रसंग आये, चले गये, अपमान के प्रसंग आये चले गये। इन सबको दीपशिखावत् प्रकाशते हुए हम चैतन्य, साक्षी, कृष्णतत्त्व, अंतर्यामी आत्मा हैं। 'सोऽहम्...' इस प्रकार का आपका अनुभव प्रकट हो जाय, आसाराम की ऐसी आशा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीवनयोग

तस्मात् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत्।
आत्मनीक्षस्व विततं आत्मानं मय्यधीश्वरे।।

'इसलिए चित्त और इन्द्रियों का संयम करके जगत को अपने में देखना और अपने व्यापक आत्मा को परमात्मा में देखना चाहिए।'

(श्रीमद् भागवतः 11.7.9)

श्रीमद् भागवत में भगवान उद्धव से कहते हैं- जो उन्नत विचार के आदमी हैं वे अपने चित्त और इन्द्रियों को संयत करें। जगत को अपने में देखें। अपने आत्मा को आनन्दित करें, अपने आत्म-स्वभाव को जगायें।

सच्ची पत्नी वह है जो पति को सहयोग दे और सच्चा पति वह है जो पत्नी को सहयोग दे। सच्चा मित्र वह है जो मित्र को सहयोग दे।

सच्चा सहयोग वह है जो उनको स्वतन्त्र कर दे।

सच्ची स्वतंत्रता वह है जिसमें बिना विषय के, बिना विकारों के, बिना पाप और ताप के सुखी रह सकें।

यही सच्ची स्वतन्त्रता है और इसी स्वतन्त्रता में पहुँचाने वाला सहयोग सच्चा सहयोग है।

जो स्त्री अपने पति को अपने देह में केन्द्रित करके सुख देना चाहती है, जो पति अपनी पत्नी का देह नोचकर ही सुखी रहना चाहता है, वास्तव में वे दोनों एक दूसरे के हितैषी नहीं हैं, कल्याण कारी नहीं हैं, एक दूसरे के शत्रु ही हैं।

सच्ची पत्नी वह है जो पति को प्रेम देकर उसके प्रेम को परमात्मा में पहुँचाने का प्रयत्न करे। सच्चा पति वह है जो पत्नी को समझ देकर, उसकी समझ जहाँ से स्फुरित होती है उस अधिष्ठान की तरफ से जाने में सहयोग करे। ऐसे पति-पत्नी एक दूसरे के परम हितैषी हैं, एक दूसरे के परम कल्याणकारी हैं।

बालक स्नेह करता है, स्नेह बरसाता है। वह नही देखता तुम्हारे धन को, नहीं देखता तुम्हारे पद प्रतिष्ठा को, नहीं देखता तुम्हारी कुर्सियों को। वह तो प्रेम बाँटता है। उस बालक से प्रेम करना सीखो। उन शिष्यों से भी सीखो जो निर्दोष प्रेम बाँटकर अपनी दृष्टि विश्वव्यापी बनाते हैं।

जागतिक वस्तुओं के बिना आपका व्यवहार तो नहीं चलता। तो क्या करें ? जागतिक वस्तुओं से, विषयों से और जागतिक सम्बन्धों से जो आपको हर्ष आता है, आनंद आता है उस हर्ष और आनंद को आप भीतर ले जाओ और भीतर के सच्चे आनन्द का प्रकटाकर विश्व में व्यापक कर दो.... आपकी दृष्टि व्यापक हो जायेगी, ब्रह्माकार बन जायेगी।

संसार की वस्तुओं का अत्यंत अनादर नहीं कर सकते, संसार के व्यवहार का अत्यंत अनादर नहीं कर सकते। साथ ही साथ संसार के सम्बन्धों में, व्यवहार में, वस्तुओं में आसक्ति करके अपने विनाश भी तो नहीं करना चाहिए।

संसार के सम्बन्ध हों, अच्छा है। पति-पत्नी का सम्बन्ध हो, अच्छा है। पिता-पुत्र का सम्बन्ध हो, अच्छा है। माँ-बेटे का सम्बन्ध हो, अच्छा है। भाई-बहन का सम्बन्ध हो, अच्छा है। मित्र-मित्र का सम्बन्ध हो, अच्छा है।

लेकिन....

आदमी जब इन सम्बन्धों में पूर्ण रूप से उलझ जाता है तब ये ही सम्बन्ध उसके लिए नरक के द्वार खोल देते हैं। जीते जी अशांति, कलह और विद्रोह की आग में जलना पड़ता है और मरने के बाद नरकों की यात्रा करनी पड़ती है। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है।

तुम्हारे भीतर छुपे हुए स्नेह और आनन्द को जगाने के लिए तुम्हें बाहर के फूल, बाहर के फल, बाहर की हवाएँ, बाहर की सुविधाएँ, बाहर के सम्बन्ध, बाहर के स्नेही-मित्र-पड़ोसी दिये जाते हैं ताकि तुम भीतर के स्नेह और आनंद तक, भीतर के परम स्नेही और मित्र तक पहुँच जाओ, भीतर की सुवास तक पहुँच जाओ और आत्मानंद के फल को पा लो। तुम बाहर से भीतर जा सको। इसीलिए प्रकृति ने यह सब व्यवस्था की है।

लेकिन.....

तुम बाहर के सहारों में उलझ जाते हो। जैसे, बच्चा मेज के सहारे खड़ा है। मेज हटा दिया जाता है तो बच्चा गिर जाता है। प्रकृति भी तुम्हें बाहर के सहारे देती है ताकि तुम उनके द्वारा खड़े होकर फिर आत्मनिर्भर बन जाओ, परन्तु तुम उन सहारों में उलझ जाते हो। आत्मनिर्भर होने के बजाय पराधीन बन जाते हो। सुख के लिए बाह्य पदार्थों, वस्तुओं, व्यक्तियों की तरफ ताकते रहते हो। लेकिन प्रकृति माता बड़ी दयालु है। दिये हुए सहारे हटाकर तुम्हें सावधान करती रहती है।

तुम बाहर के फूल-फल, चीज-वस्तुएँ, स्नेही मित्र, सम्बन्धों के सहारे हो जाते हो तो समय पाकर वे सहारे ही तुम्हे निःसहाय बनाने लगते हैं। तुम्हारे मित्र ही शत्रुता करने लगते हैं, सफलता असफलता का रूप धारण करने लगती है। यह प्रकृति का बिल्कुल अकाट्य नियम है। ज्यों ही तुमने उन चीजों पर अपना आत्मकेन्द्र रखा, उन चीजों पर भरोसा किया, उन सम्बन्धों पर भरोसा किया, उनके सहारे ही खड़े रहे त्यों ही वे सब सहारे एक-एक करके हटा दिये जायेंगे। प्रिय पदार्थ छीन लिये जाएँगे। सम्बन्ध खट्टे होने लग जायेंगे।

प्रकृति माता आपकी उन्नति के लिए हर चीज देती है। जैसे, माँ बच्चें को चलना सिखाने के लिए गाड़ी देती है। अगर बच्चा गाड़ी से चिपका ही रहे तो माँ थप्पड़ मार कर गाड़ी छुड़ा देती है। बच्चा छोटा है तो माँ गोद में सुलाकर पयःपान कराती है परन्तु वही माँ समय आने पर नीम का रस अथवा कोई कड़ुवा रस स्तन पर लगाकर पयःपान छुड़ाती भी है।

ऐसे ही बाहर के सम्बन्धों की प्रारंभिक अनुकूलता के द्वारा तुम पा पा पगली चलो, चालनगाड़ी के सहारे चलो। पति-पत्नी के द्वारा, पुत्र-परिवार के द्वारा जो रस आता है उसके सहारे अपना भीतरी प्रेम प्रकटाने के लिए तैयार हो जाओ। इसीलिए यह संसाररूपी बालमंदिर है। उसमें आसक्ति करके चिपकने के लिए और उसके पराधीन होने के लिए नहीं है।

ज्यों ही उन सहारों पर आधारित हुए कि धोखा खाया। जो ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए वह अगर मित्र पर रखा तो वह मित्र जरूर तुम्हारा शत्रु हो जायगा या धोखा करेगा या तुमसे पहले चल बसेगा। आखिर तुमको रोना ही पड़ेगा।

बाहर के धन का थोड़ा-बहुत उपयोग कर लो, कोई मना नहीं, बाहर के वस्त्रों का उपयोग कर लो, कोई मना नहीं। किन्तु ज्यों ही तुम्हारा सुख उन वस्त्रों पर आधारित बनेगा त्यों ही वस्त्रों के निमित्त तुम्हें अशांति पैदा होगी। मोटर गाड़ी का उपयोग करो लेकिन ज्यों ही उसके

आधार पर तुम्हारी प्रतिष्ठा बनेगी, जीवन सुखी भासेगा त्यों ही कुछ न कुछ गाड़ी विषयक गड़बड़ होगी। ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन टिकाया तो कुछ न कुछ विघ्न-बाधाएँ आयेंगे ही। .....और आने ही चाहिए। इसी में तुम्हारा हित छुपा है।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सदब्रह्म तेरा वंश है।।
चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है।
जन्में नहीं, मरता नहीं, कूटस्थ है अविनाशी है।।

तुम्हारे कुल-वंश-परंपरा देखें तो मूलतः ब्रह्म है, हाड़-मांस-चाम आदिवाले माता-पिता नहीं। हाड़-मांस के माता-पिता जिससे स्फुरित हुए, सृष्टि का जो आदि कारण है, अभी भी सृष्टि का जो आधार है, प्रलय के बाद भी जो रहता है वह सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा ही तुम्हारा आदि उदभव स्थान है। ब्रह्म की जात ही तुम्हारी जात है। तुम्हें गोविन्दभाई कहना, मोती भाई कहना, तुम्हें मनुष्य कहना.... मुझे लगता है कि मैं ईश्वर का अपमान कर रहा हूँ। तुम्हें अगर पटेल कहता हूँ तो मुझे लगता है मैं ईश्वर को गाली दे रहा हूँ। तुम्हें एक व्यक्ति कहता हूँ तो लगता है परमात्मा का अनादर कर रहा हूँ। वास्तव में व्यक्ति यह शरीर है। जिस दिन से तुम इस शरीर पर आधारित हो गये उसी दिन यह शरीर तुम्हें दुःख, चिन्ता और भय में घेर लेता है।

शरीर तुम्हारा एक साधन है। ऐसे साधन तुम्हें हर जन्म में मिलते रहे हैं। न जाने कितने-कितने साधन आज तक तुम्हें मिले। साधन को जब तुम साध्य-बुद्धि से पकड़ लेते हो तब वही साधन तुम्हारे लिए फाँसी बन जाता है। अथर्ववेद के 31वें अध्याय का पहला श्लोक हैः

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

'इस जगत में जो भी नाम-रूपात्मक स्थावर-जंगम पदार्थ हैं वे सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय हैं। उस नाम-रूपात्मक प्रपंच का त्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा का पालन करो। गीध के समान लोलुप न बनो। यह धन किसी का नहीं है।'

(ईशावास्योपनिषदः1)

यह सारा जगत उस परब्रह्म परमात्मा की सत्ता से ओतप्रोत है। उसे त्याग से भोगो, आसक्ति से नहीं। ठण्डी मिटाने के लिए तुम्हारे पास वस्त्र हो, कोई हरकत नहीं। शरीर को निवास की आवश्यकता हो तो सीधा-सादा घर हो, साफ-सुथरा छोटा-सा घर हो तो काम चल जायगा। अगर चाहा कि, "बढ़िया इमारत बनवाऊँ, लोगों को दिखाऊँ, ठाठ से रहूँ....' तो वही इमारत तुम्हारी खोपड़ी के लिए मजदूरी बन जायेगी। ठण्डी गर्मी से शरीर की रक्षा करने के लिए सादे-सीधे वस्त्र हों तब तक तो ठीक है पर जब तुम वस्त्रों पर आधारित हो जाते तो वे ही वस्त्र तुम्हारे समय और शक्ति को खा जाते हैं, तुम्हारी चेतना को बिखेर देते हैं। ऐसे ही शरीर की तंदुरूस्ती

के लिए भोजन करते हो तब तक तो ठीक है लेकिन भोजन के द्वारा मजा लेने लग गये तो वही भोजन फिर रोग का कारण बन जाता है।

ज्यों ही तुमने बाहर के साधनों पर सुख-बुद्धि की, सुख के निमित्त उन्हें पकड़ना चालू किया त्यों ही वे साधन तुम्हारे हाथ से खिसकना शुरू करेंगे। अथवा, ये साधन तुम्हें चिन्ता, भय, संघर्ष, शोक और अशांति की आग में झोंकने लगेंगे। इसीलिएः

तेन त्यक्तेन भुंजीथा।

त्याग से भोगो। बुलबुल गीत गा रही है.... कोयल गीत गा रही है... सुन लिया, ठीक है। लेकिन हररोज बुलबुल गाती रहे, कोयल भी गीत गाती रहे, फूल खिले हुए मिलें, मन्द-मन्द मधुर हवायें चलती रहें, अमुक मित्र सदा मिलता ही रहे, अमुक कुर्सी सदा बनी रहे, सदा मान मिलता रहे, अमुक कुटुम्बीजन ऐसा ही व्यवहार करता रहे, ऐसा आग्रह दिल में आ गया तो समझो वे परिस्थितियाँ अवश्य बदलेंगी, चीजें छीन ली जायेगी, व्यक्तियों का स्वभाव और व्यवहार तुम्हारे प्रति बदल जायगा। उन वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थतियों के निमित्त कोई न कोई आपदा तुम्हें सहनी पड़ेगी। जो प्यार ईश्वर को देना चाहिए, जो आधार ईश्वर पर रखना चाहिए वह आधार अगर किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, समाज या सत्ता पर रखा या कुर्सी पर रखा तो धोखा खाओगे ही। कुर्सी नसीन को हटाया जाता है, गिराया जाता है अथवा उस कुर्सी के कारण अपनी शांति का भंग हो जाता है। यह प्रकृति का अकाट्य सिद्धान्त है।

हम दुःखी क्यों हैं ?

दुःख न भगवान बनाता है न प्रकृति बनाती है। दुःख बनाती है हमारी बेवकूफी। दुःख बनाती है हमारी नासमझी। जो प्यार हमें परमात्मा के प्रति बहाना चाहिए वह यदि साधनों के प्रति चिपकाया तो दुःख घेरेंगे ही। जो साधन का जिस ढंग से उपयोग करना चाहिए वह नहीं किया और उसके आधीन हो गये तो वही साधन हमारे लिए दुःख का साधन बन जाता है। कुआँ बनाया है शीतल जल के और कोई उसमें गिरकर मरे तो मर्जी उसकी। सरिता बह रही है। वह सिंह को भी पानी पीने देती है और गाय को भी। कोई उसमें कूदकर मरे तो मर्जी उसकी।

संसाररूपी सरिता से थोड़ा जल पीकर हमें अपना भीतर का सुख जगाना है। हम जब पानी के लिए बोरिंग करते हैं तो प्रारंभ में नदी से, तालाब से या किसी के कुएँ से पानी लाकर डालना पड़ता है, खुदाई करनी पड़ती है। पानी डालते हुए, खुदाई करते हुए जब गहरे पहुँच जाते हैं तो भीतर से पानी अपने आप उछलने लगता है।

अपने बोर का पानी प्रकटाने के लिए पहले दूसरों के बोर का पानी लाते हैं ऐसे ही विधाता ने अपने भीतर का आनंद छलकाने के लिए संसार के सुखों की सुविधा की है। संसार का जो सुख है, पति या पत्नी का जो प्रेम है, नन्हें मुन्ने शिशु का जो निर्दोष हास्य है, मधुर मुस्कान है वह निर्दोष ब्रह्म में जाने के लिए मिली है।

पत्नी जब पति के स्नेह को विकारों में ही बाँध रखने की इच्छा विस्तृत कर लेती है तो वह पत्नी पति के लिए शत्रु हो जाती है। ऐसे ही पति अगर पत्नी के प्रेम को विकारों के दायरे में केन्द्रित कर लेता है तो वह पत्नी का शत्रु हो जाता है।

मित्र का प्रेम परम मित्र परमात्मा को मिलने के लिए बड़ा सहयोगी बन सकता है लेकिन मित्र चाहे कि मित्र मुझसे ही मिलता रहे, मेरी तुच्छ, हल्की, निम्न इच्छाओं को पूर्ण करता रहे, मेरा देहाध्यास बढ़ाने में सहयोग देता रहे तो वे ही मित्र एक दूसरे को खड्डे में ले जाने वाले हो जाते हैं।

उन्हीं लोगों के बेटे प्रायः लुच्चे, बदमाश, भगेड़ु होते हैं जो लोग अपने कुटुम्ब के अन्दर छोटे-से दायरे में ही प्रीति करते हैं। जो लोग अपने प्रेम को व्यापक नहीं बनाते, अपने तन-मन-जीवन को 'बहुजनहिताय.... बहुजनसुखाय' प्रवृत्ति में नहीं लगाते अपितु पत्नी-पुत्र-परिवार के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित करते हैं, अपने परिवार से अति मोह करते हैं और दूसरे परिवारों का शोषण करते हैं वे ही लोग आखिर अपने परिवारों से दुतकारे जाते हैं, उन्हीं के बच्चे भाग जाते हैं, उन्हीं के बच्चे उनका विरोध करते हैं, उन्हीं के बच्चे उनकी अशांति का कारण बनते हैं।

जो प्रेम परमात्मा को करना चाहिए वह प्रेम अगर मोहवश होकर कुटुम्ब में केन्द्रित किया तो कुटुम्ब तुम्हें धोखा देगा। जो कर्म परमात्मा के नाते करना चाहिए वे ही कर्म अगर अहंकार पोसने के लिए किये तो जिनके वास्ते किये वे लोग ही तुम्हारे शत्रु बन जाएँगे। जो जीवन जीवनदाता को पाने के लिए मिला है, वह अगर हाड़-मांस के लिए खर्च किया तो वही जीवन बोझीला हो जाता है। इसीलिए ऋषि कहते हैं-

तस्मात् जागृहि जागृहि।

'इसलिए तुम जागो..... जागो......।'

तुलसीदास जी कहते हैं-

मोहनिशा सब सोवनहारा।
देखहिं सपने अनेक प्रकारा।।

मोह से आदमी अनेक प्रकार के स्वप्न देखता है। अहंकार बढ़ाऊँगा, सजाऊँगा....। दुर्योधन, दुःशासन, धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर और अर्जुन के जीवन में तुम क्या देखते हो ?

गांधारी सत्य पर है लेकिन आधार लिया है कपट का। उसका पति अन्ध धृतराष्ट्र है जरा ऐसा, भीतर एक, बाहर दूसरा। रात को नींद नहीं आती। बेचैन रहता है। आँखों से दिखता नहीं फिर भी अंदर कपट के कारण कितना दुःखी ! कितना अशांत ! जो प्रेम परमात्मा को करना चाहिए, धर्म को करना चाहिए, सत्य को करना चाहिए वह प्रेम अगर मोहवश होकर दुर्योधन को करता है तो धृतराष्ट्र की नींद हराम हो जाती है।

जो प्रीति जीवनदाता को करनी चाहिए वह प्रीति कुर्सी को करता है तो दुर्योधन लाक्षागृह बनाता है। उसका मामा शकुनि कितने-कितने षडयंत्र रचता है फिर भी सफल नहीं होता क्योंकि

प्रकृति किसी व्यक्ति के अधीन नहीं चलती, सत्य किसी व्यक्ति के अधीन नहीं चलता। तुम्हारा प्रारब्ध किसी व्यक्ति के अधीन नहीं बनता। तुम्हारे कर्मों और तुम्हारी मान्यताओं के मुताबिक प्रारब्ध का सर्जन होता है।

आचार्य विनोबा भावे भूदान यज्ञ करते-करते अजमेर पहुँचे थे तब की बात है। सामाजिक कार्य करने वाला कोई अमेरिकन टूरिस्ट विनोबाजी से मिलने आया। कुछ दिन उनके साथ गुजारे। वह जब विदा हो रहा था तब बोलाः

"हमारे अमेरिका के लिए आप जैसे पवित्र पुरूषों का कोई सन्देश हो तो मुझे दीजिए।"

आचार्य बोलेः "मेरे जैसा छोटा आदमी तुम्हारे अमेरिका जैसे बड़े देश के लिए क्या सन्देश दे ? मैं तो साधारण आदमी पैदल चलने वाला..... माँगकर खाने वाला.....।"

"नहीं महाराज ! आपकी प्रतिभा मैं जानता हूँ। आपका सन्देश हमारे देश के लिए बड़ा हितकर सिद्ध होगा। आप निरपेक्ष हो, भगवान के प्रति आपकी आस्था है और आंतर सुख में आपकी गति है।"

आंतर सुख में जिसकी गति होती है उसकी सलाह-परामर्श अनेकों को उपयोगी होती है। जहाँ उसकी हाजिरी होती है उस जगह के परमाणु (वायब्रेशन) पवित्र बन जाते हैं। वह जगह पवित्र तीर्थ हो जाती है। तो वह स्वयं कितना पवित्र होता होगा !

वह अमेरिकन कहने लगाः महाराज ! हमारे देश के लिए आपका कल्याणकारी सन्देश दीजिए।

विनोबाजी दो मिनट के लिए एकदम शांत हो गये। ऐसा पुरूषों को कोई स्कूली किताब या पुराण-कुरान नहीं खोलने पड़ते। उनका विश्वप्रेम या विश्वनियंता में गोता मारना ही सारी किताबों का रहस्य ले जाता है। विनोबाजी ने कहाः

"तुम्हारे देश में अस्त्र-शस्त्र खूब बनते हैं। अपने देशवासियों को कहोः युद्ध के अस्त्र-शस्त्र सरंजाम खूब बनाओ, उत्साह से बनाओ, कोई मना नहीं। 364 दिन तक निरंतर बनाते ही रहो। फिर 365 वें दिन सारे के सारे शस्त्र दरिया में फेंक दो। बस इसी में देश की उन्नति है। विश्व से प्रेम करने का यही तरीका है तुम्हारे लिए। बिना प्रेम के किसी देश की सच्ची उन्नति नहीं होती।"

उन लोगों ने कितनी बात मानी यह तो वे लोग जानें लेकिन इन प्यारे संत ने सलाह तो बहुत प्यारी दी। सालभर खूब शस्त्र बनाओ और आखिरी दिन जब समुद्र में डाल दो। क्योंकि सालभर शस्त्र नहीं बनाएँगे, काम नहीं करेंगे तो आलसी हो जाएँगे, कारखाने बन्द हो जाएँगे, बेरोजगारी हो जायेगी। राजसी और तामसी आदमी को तो प्रवृत्ति होनी ही चाहिए। सात्विक आदमी निवृत होकर समाधि करे तो ठीक है लेकिन रजस प्रधान व्यक्ति को तो प्रवृत्ति होनी ही चाहिए। उसको अगर अवकाश दिया जायेगा, आधा शनिवार या पूरा शनिवार छुट्टी दी जायेगी तो

उत्पात करेगा, कमर कमजोर करेगा, विलास में ग्रस्त होगा। उसको तो काम में लगाये रखना चाहिए।

दिन में तुम प्रवृत्ति करो, खूब करो। 23 घण्टे तक व्यवहार के सब सम्बन्ध निभाओ लेकिन 24वाँ घण्टा ऐसे निवृत्त हो जाओ, सारी प्रवृत्ति और सारे सम्बन्धों पर ऐसा ट्रैक्टर घुमा दो कि बस.... सारे सम्बन्ध जिसकी सत्ता से हो रहे हैं उस सर्वसत्ताधीश में सब स्वाहा..... चित्त में आत्म-विश्रांति छा जाय !

चित्त में जो आसक्तियाँ हैं उन आसक्तियों के कारण ही भय होता है। सत्तावान को कुर्सी चले जाने का भय, बलवान को बल चला जाने का भय, धनवान को धन चला जाने का भय तब होता है जब ईश्वर के बदले इन सबको प्रेम करते हैं, इनके सहारे अपना जीवन बनाते हैं। सर्व सहारों के सहारे ईश्वर का भरोसा छोड़कर जड़, निराधार चीजों में भरोसा करते हैं इसीलिए भय, शोक, चिन्ता, ईर्ष्या, स्पर्धा होती है।

आपको होगाः "महाराज ! हम तो गृहस्थी हैं...... संसारी हैं। आप जैसे बाबाजी तो हैं नहीं कि बैठे रहे कुटिया में। जब मौज आयी तब बाहर निकले। हमको तो धमाधम प्रवृत्ति करनी पड़ती है क्योंकि हम संसारी हैं, गृहस्थी हैं।"

ये सब केवल तुम्हारी मान्यताएँ हैं। वास्तव में तुम वही हो जो श्रीकृष्ण का आत्मा है, जो रामजी का आत्मा है, जो शिवजी का आत्मा है। ऐसा अपना ऊँचा अधिकार छोड़कर तुम्हें गलबा वाघरी के पड़ोसी बनने की आवश्यकता नहीं है और यह शरीर गलबा वाघरी से जरा भी बढ़िया नहीं है। वाघरी वाड़ में जैसी गंदगी होती है वैसी ही शरीर में है। सीधी और टेढ़ी हड्डियाँ... उनके बीच मांस के लोचे। पोली जगह में वात-पित-कफ-मल-मूत्र। इस शरीर को मैं मानकर, सरकने वाली चीजों को मेरी मानकर, अपने को संसारी-गृहस्थी मानकर मुसीबतें उठाते ही चलो तो मर्जी हो नहीं। तुम तो सरकने वाले शरीर और संसार को देखने वाले हो। तुम शरीर से न्यारे, शरीर के स्वामी हो। तुम संकल्प करते हो तब हाथ उठता है, नहीं तो हाथ की क्या ताकत की उठे ? तुम संकल्प करते हो तो आँख की पलकें उठती हैं, गिरती हैं। तुम पैरों को जिधर जाने का आदेश दो वहाँ जाने के लिए तत्पर हैं। तुम देह के और मन के स्वामी हो मगर उन पर तुम आधारित हो जाते हो तो ये तुम्हारे स्वामी हो जाते हैं। तुम इनके चाकर के भी चाकर हो जाते हो। बुरी हालत हो जाती है।

एक विद्यार्थी विदेश में पढ़ रहा था। बड़ा सुखी घर का युवक था। उसके पिता बैरिस्टर थे। पुत्र को खर्च भेजते थे।

एक बार पिता ने बेटे को पत्र में लिखाः "तुम क्या-क्या खर्च करते हो, इतने पैसे कहाँ-कहाँ लगाते हो इसका हिसाब मुझे भेजो।"

उस स्वाभिमानी विद्यार्थी ने देखा किः "पिता को मुझ पर विश्वास नहीं रहा अथवा मेरे आत्मगौरव को हानि पहुँचाने के लिए पत्र लिखा है। ऐसा है तो अब पिता के आधार पर क्या जीना ? छोटी-छोटी चीजों का हिसाब भेजूँ ! कुछ भी हो, मैं अपना गुजारा आप कर लूँगा।"

उसने निर्णय कर लिया और पिता को लिख दियाः "मुझे लगता है कि आपका मेरे प्रति विश्वास उठ गया है, इसीलिए हिसाब माँग रहे हैं। कृपया, आप मुझे खर्च नहीं भेजें। मैं अपने ढंग से जी लूँगा और पढ़कर ही देश लौटूँगा।"

पिता ने पत्र पढ़ा। वे बुद्धिमान थे, योगी और साधुओं का संग करते थे। देखा कि बेटे ने थोड़ा गलत अर्थ लगाया है, कोई बात नहीं। बेटा आत्मनिर्भर तो हो गया, बढ़िया बात है। वे प्रसन्न हो गये।

बेटे को स्नेह भरे शब्दों में पत्र लिखाः "तेरी आत्मनिर्भरता बताता हुआ पत्र पढ़कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। .....और वत्स ! मेरा भाव यह नहीं था कि तू कहीं गलत जगह पर खर्च कर रहा है। केवल तेरी दिनचर्या और आर्थिक व्यवहार जानने के लिए सहज स्वभाव में लिखा था। सन्देह होने का कोई प्रश्न ही नहीं है बेटे...." आदि-आदि प्रेमभरे वचन लिख दिये।

पुत्र को जो थोड़ा-बहुत दुःख हुआ था वह पिता का पत्र पढ़ कर दूर हो गया। वह पुत्र था स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू और पिता थे श्री मोतीलाल नेहरू।

यह घटना आपको इसलिए सुना रहा हूँ कि पिता खर्च भेजे और पुत्र खर्च करे, ठीक है, लेकिन कभी पिता न भी भेजे तो भी पुत्र बेपरवाह है। ऐसे ही पिताओं का भी पिता ब्रह्म परमात्मा तुम्हें सुख-सुविधा देता है। सुख-सुविधा कभी कम हो या न भी हो तो तुम उनको कहो कि नहीं भेजो तो भी कोई बात नहीं। हमको जीने की कला आ गई है। हम अपने पैरों पर खड़े हैं, आत्मनिर्भर हैं। वह पिता आप पर ज्यादा प्रसन्न रहेगा, ज्यादा भेजेगा। ऐसे बच्चों को मैं जानता हूँ जो उसको बोलते हैं कि हमें कोई जरूरत नहीं है, तुम्हें गरज हो तो भेजो। वह प्यारा परमात्मा इतना भेजता है कि वे खाते-खाते ऊब जाएँ और अन्य हजारों लोगों को खिला सकें फिर भी वह भेजना कम नहीं करता, बढ़ाता ही चला जाता है।

ऐसे पुत्रों को मैं जानता हूँ। शायद तुम भी जानते होगे।

सोचा मैं नहीं कहीं जाऊँगा यहीं बैठकर अब खाऊँगा।
जिसको गरज होगी आयेगा सृष्टिकर्त्ता खुद लायेगा।।

ऐसा विशाल होना चाहिए। यह क्या, दो रोटी के टुकड़ों के पीछे हाय हाय ? कोई मान दे तो भागे मोटर को पेट्रोल जलाते हुए उसके वहाँ उदघाटन करने। मान के लिए भागते फिरें, जरा-सा सुख पाने के लिए भागते फिरें इसमें अपनी महत्ता कम हो जाती है। आप अपने आत्मा में रहो।

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ता केशा नखा नराः।।

दाँत अपनी जगह पर हैं तो उनकी कीमत है, शोभा है। वे अपनी जगह से च्युत हो जायें, गिर जायें तो चाहे कितने भी बड़े आदमी के हों, उनकी कोई कीमत नहीं। छोटे से छोटे आदमी के दाँत भी अगर अपनी जगह पर हैं तो शोभा देते हैं। ऐसा ही बाल और नाखून के बारे में है। मनुष्य अपने स्थान में डटा रहता है तो शोभता है। अपनी जगह से गिरा, स्थानभ्रष्ट हुआ तो तुच्छ हो जाता है, सारी शोभा खो देता है। वह जब अपना आनन्द-स्वरूप आत्म-सिंहासन छोड़कर गिड़गिड़ाने लगता है कि, 'हे कुर्सी ! तू मुझे सुख दे.... हे पत्नी के हाड़-मांस ! तू मुझे सुख दे.... हे पति के हाड़-मांस ! तू मुझे सुख दे...... हे बाहर की वाहवाही ! तू मुझे सुख दे....' तब वह लाचार हो जाता है, दो कौड़ी का हो जाता है। आप अपने स्थान पर रहो, आत्मस्वरूप में जगो।

सच्चा भक्त सुख का आकांक्षी नहीं होता, वह तो सुख का दाता होता है। प्रेम का दाता होता है, कृपा का दाता होता है। आप भक्त बनकर जीवन गुजारो।

"महाराज ! हम तो गृहस्थी हैं......।"

हाँ, मैं तुम्हारे लिए ही कह रहा हूँ, कोई हौवा के लिए, कौवा के लिए नहीं कह रहा हूँ। हम जो भी सत्संग-प्रवचन करते हैं, पहले ध्यान-भजन करके सोचते हैं, विचारते हैं कि हमारे बोलने से आपका हित हो, आपको जीवन में काम आये, वही हम बोलेंगे।

विद्यार्थी हों बालमंदिर के तो दसवीं कक्षा के पोथे लेकर थोड़े ही बैठेंगे ! विद्यार्थी हों एस.एस.सी. के तो पी.एच.डी. का कोर्स थोड़े ही चलाएँगे !

"बाबाजी ! हम सादे कैसे रहें ? हम तो ठहरे संसारी। सादा घर हो, सादे कपड़े हों, फर्नीचर कम हो या कैसे चले ? हमें तो जरा व्यवस्थित चाहिए। टी.वी. चाहिए, वी.सी.आर. चाहिए, मारूति चाहिए। घर में कोई आये तो जरा अच्छा दिखे। स्वामी जी ! ये सुख-सुविधा की चीजें हमारे लिए नहीं चाहिए। यह सब कुछ अपने लिए नहीं करते महाराज ! लेकिन बच्चे बड़े हुए हैं उनकी शादी का सवाल है। लड़की किसी के घर देनी है तो कोई लोग घर देखने आते हैं। महाराज ! आप तो बाबाजी हैं.....।"

हम बाबाजी तो हैं लेकिन पागल जी नहीं हैं। आपको हानि पहुँचाये ऐसा उपदेश दें ऐसे नहीं हैं।

ऊँची-ऊँची दीवारें, मूल्यवान गाड़ियाँ अथवा कूड़-कपट-धोखा-धड़ी करके, चिन्ताओं के पोटले उठा-उठाकर जो फर्नीचर इकट्ठा किया है और घर को गोडाउन बना दिया है वह सब आपके घर आने वाले अतिथियों को प्रसन्न कर देगा ऐसी बात नहीं है।

हर व्यक्ति अपना निजी जीवन जीने के लिए स्वतंत्र है। आप काका मिटकर भतीजा होने की गड़बड़ में पड़ो ही मत। आप सुन्दर, सुहावनी, बढ़िया चाँदी की थाली में किसी को भोजन करा दो, मखमल की गद्दियाँ दे दो, वी.सी.आर. - टी.वी. सजाओ, फर्नीचर सजाओ, आने वाले अतिथि को ऐहिक सुख-सुविधाओं में गरकाव कर दो लेकिन 'टैन्शन' से, बेईमानी से एकत्रित की

हुई चीजों से आपका हृदय मुरझाया हुआ मिलेगा तो उस अतिथि को वह आनन्द, वह सुख और वह प्रेम नहीं मिलेगा।

मैं आपको कुछ नहीं देता। न यहाँ वी.सी.आर. की व्यवस्था है न टी.वी. की व्यवस्था है न डनलोप की गद्दी की व्यवस्था है - ये न पानी का गिलास भरकर सामने रखने की व्यवस्था है - ये सारी असुविधाएँ सहकर भी तुम लोग हजारों की संख्या में भागे-भागे आते हो किसलिए ? मैं केवल एक मीठी मुस्कान दे देता हूँ, तुम्हारा हृदय पुलकित हो जाता है, तुम उन्नत हो जाते हो, आनंदित हो जाते हो।

आपके घर आये हुए अतिथि भी आपकी एक मीठी निगाह, मीठी मुस्कान से पुलकित हो जाय, उन्नत हो जाय, आनन्दित हो जाये, जैसा आया था वैसे का वैसा आपके घर से न लौटे, उन्नत होकर लौटे। अतिथि विलासी संस्कार लेकर तुम्हारे घर में आवे और वहाँ भी विलासी संस्कार बढ़ें तो उनका पतन हो गया। जैसा आया था उससे उन्नत और स्वतंत्र होकर लौटे, सोचे कि इनके पास चीजें कम हैं फिर भी सुखी हैं और हमारे पास इतना सारा वैभव का कचरा है फिर भी हृदय में होली ?

लोग आपके घर से लौटे तब आपके व्यवहार से मिली हुई शांति-सुख-स्वातंत्र्य के गीत गुंजाते हुए अपने घर जायें तभी तुम्हारी मुलाकात की महत्ता है। तभी तुम्हारी वाणी और दर्शन का मूल्य है। अपने घर आये हुए अतिथि की यही सच्ची सेवा है।

पत्नी साड़ियो की गुलाम न रहे, पति पेन्टों का गुलाम न रहे, पुत्र युनिफार्म का गुलाम न रहे, पुत्रियाँ पफ-पावडर-लिपस्टिक की गुलाम न रहे। सादे, साफ-सुथरे अच्छे कपड़े हों, सादा और पौष्टिक भोजन हो यह पर्याप्त है। जाड़ा-मोटा खाना और जाड़ा-मोटा पहनना शरीर को तन्दुरूस्त रखता है।

जगत के जो महान पुरूष हो गये हैं, जो सादे रहे हैं, जिन्होंने बड़ी-बड़ी हवेलियाँ नहीं बनायी, बड़े-बड़े मकान नहीं बनाये, जो अपनी आवश्यकताएँ कम करके जी पाये उन्होंने ही जगत को भक्तिशास्त्र दिया है। उन्होंने ही विश्व को प्रेमाभक्ति का दान दिया है। उन्होंने ही विश्व को दर्शनशास्त्र दिया है।

भगवान वेदव्यासजी महाराज आठ घण्टे ध्यान में रहते थे। बाहर की चीजों में समय नहीं लगाते थे। ध्यान से उठते, भूख लगती तो बद्रिकाश्रम में सामने कुछ बेर (बदरी) के पेड़ थे, बेर लेकर खा लेते। इसी पर से उनका नाम बादरायण भी है। उन्होंने ऐसे-ऐसे ग्रन्थ बनाये कि अभी तक उनकी बराबरी करने वाला विश्व में कोई पैदा नहीं हुआ। सादा जीवन था उनका।

भक्तमाल के रचयिता नाभा जी महाराज का जीवन भी बहुत सादा, सरल था। रामायण के रचयिता तुलसीदास जी का जीवन सरल था।

विदेशों में भी कई अच्छे-अच्छे विद्वान, तत्त्वचिंतक हो गये जिनका जीवन बहुत सादा था। कोई-कोई तो एक छोटे-से बक्से में जीवन गुजारने वाले भी थे। उन्होंने वहाँ के लोगों को कैसे-कैसे शास्त्र दिये !

वैशेषिक दर्शन के रचयिता कणाद मुनि खेतों में गिरे हुए कण चुनकर गुजारा चला लेते थे। इसी से उनका नाम कणाद पड़ा। शुद्ध बुद्धि से चिन्तन करते-करते दूर के, देश-देशान्तर के विद्वान उनके दर्शन करने आते थे। तब वहाँ के राजा की आँख खुली कि हमारे राज्य के अरण्य में ऐसे महान कणाद मुनि रहते हैं जो एक-एक कण चुनकर गुजारा कर लेते हैं।

सुवर्णमुद्राओं का थाल भरकर, फल-फ्रूट, सूखे मेवे, मिठाई आदि के टोकरे भरकर राजा उनके पास गयाः

"महाराज ! स्वीकार करो और मुझे क्षमा करो। आप जैसी महान् विभूति मेरे राज्य में..... और मैंने आपकी सँभाल नहीं ली।"

"कोई बात नहीं, क्षमा है। मैं प्रसन्न हूँ।"

"महाराज ! मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि आप मेरे महल में पधारो। महल का एक भाग आपके लिए खाली करवा दिया है। दास-दासियाँ आपकी चाकरी में होंगी। बादाम रोगन लगाकर चंपी होगी, गाय का दूध होगा, घी-मक्खन होगा, नौकर-चाकर होंगे, शाम को सैर करने के लिए रथ होगा। रात को अलग शयनकक्ष होगा। माताजी के लिए रसोईघर भी बढ़िया होगा।"

कणाद मुनि बोलेः " एक मैंने तुम्हारी मान ली। अब तुम मेरी बात मान लो।"

"महाराज ! आज्ञा कीजिए।" राजा खुश होकर बोला।

"अभी चले जाओ और फिर कभी न आना।"

"महाराज ! क्यों आप नाराज हैं ?"

"जब तुम्हारे दास-दासियों से पैरचम्पी करवाऊँगा, प्रजा का शोषण करके बनाये हुए महलों में रहूँगा तो ईश्वर के गीत गाऊँगा कि तुम्हारे गीत गाऊँगा और चापलूसी करूँगा ? इसलिए हमारी आवश्यकताएँ हमें नहीं बढ़ानी हैं कि राजसी वस्तुओं की लाचारी करें और महलों में रहें।"

वास्तव में अन्न का प्रभाव मन पर पड़ता ही है। भीष्म पितामह जैसे दुर्योधन के अन्न से प्रभावित होकर पांडवों के विपक्षी बन बैठे।

रहन-सहन का भी चित्त पर प्रभाव पड़ता है। आपके घर में अगर Luxurious Life मौज-शौक का, ऐश आराम का, विलासी जीवन है तो आपके कुटुम्बीजनों का मन नीचे के केन्द्रों में रहेगा। छोटी-मोटी असुविधा या छोटी-मोटी बात पर जल्दी अशांत, उद्विग्न होने लगेंगे।

संसार की चीजें तुमसे छुड़वाई जायेंगी। ये तुमसे छुड़वाई जाएँ उससे पहले इनकी आसक्ति छुड़वाने का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। इन चीजों के लिए रोना पड़े इससे ये चीजें तुम्हारे लिए रोती रहें ऐसे तुम महान बन जाओ, ऐसी आसाराम की आशा है।

लोग संसार की चीजों में प्रीति करते हैं। जो प्रीति प्रियतम परमात्मा में लगाने के लिए है वह प्रीति व्यक्ति में, चीज-वस्तु में, सम्बन्धों में लगाता है उसका आंतर-सुख क्षीण हो जाता है। जो बाहर की प्रीति को भीतर ले जाकर भीतर की प्रीति विकसित करता है और विश्व में बाँटता है वह प्रेमपात्र हो जाता है।

वास्तव में आप ईश्वर से विभक्त नहीं हैं, दूर नहीं हैं लेकिन अभागी इन्द्रियों के साथ, अभागे शरीर के साथ, अभागे विषयों के साथ इतना चिपक जाते हैं कि आप ईश्वर से विभक्त न होते हुए भी विभक्त जैसा ही जीवन बिता रहे हैं।

आप ईश्वर से अलग नहीं हो सकते हैं, फिर भी इन अभागे आकर्षणों के कारण आपको लगता है कि ईश्वर कोई दूर देश की चीज है, ईश्वर कोई मरने के बाद मिलने वाली चीज है अथवा ईश्वर कोई बड़ी तपस्या, मजदूरी करने के बाद मिलने वाली चीज है।

हकीकत में ईश्वर के लिए तपस्या नहीं करनी पड़ती, ईश्वर के लिए मजदूरी नहीं करनी पड़ती, ईश्वर के लिए इन्तजार भी नहीं करना पड़ता, फिर भी इन्तजार करना पड़ता है, फिर भी मजदूरी करनी पड़ती है, समय का भोग देना पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारा प्रेम बाह्य चीजों में अटक गया है। इस गलती को दूर करने के लिए भजन करना पड़ता है। आसक्ति हटाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। ईश्वर को पाने के लिए तप करने की जरूरत नहीं है फिर भी तप करने की जरूरत है, ध्यान करने की जरूरत है क्योंकि ध्यान गैर जगह चला गया है, वहाँ से हटाने के लिये यहाँ लाना पड़ता है। गैर चीजों के लिए तप रहे हैं इसलिए चलो, भगवान के लिए ही तप करो। काँटे से काँटा निकालो। तुम्हारे शरीर में जान बूझकर काँटा चुभाने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन पहले अनजाने में जो चुभ गया है उसे निकालने के लिए दूसरा काँटा चुभाना पड़ता है।

नहीं तो, वह प्रियतम और मजदूरी करवा कर मिले ? प्राणी मात्र का परम सुहृद और हमें तपा-तपाकर फिर मिले ? 'सुहृदं सर्वभूतानां' प्राणीमात्र का परमहितैषी है, परम सुहृद हूँ ऐसा भगवान स्वयं कहते हैं। जो सुहृद है, परम मित्र है वह तपा-तपाकर मिले, भूखा मारकर, उपवास कराकर मिले तो वह सुहृद कैसा ? मित्र कैसा ? ऐसा अन्याय वह करता है ?

वास्तव में वह भूखा नहीं मरवाता। हमारी योग्यताएँ खा-खाकर क्षीण हो गईं, अजीर्ण की बीमारी लगी इसलिए उपवास करो। आसक्ति हो गयी इसलिए त्याग करो। मोह हो गया इसलिए एकान्त में जाओ। बहिर्मुख हो गये इसलिए अंतर्मुख हो जाओ। यह सब गलतियों को निवृत्त करने के लिए है।

कपड़ों की पिटाई क्यों करते हो ? कपड़ों से तुम्हारी दुश्मनी है ? नहीं... कपड़े मैले हो गये, उनमें गन्दगी हो गई इसलिए सोडाखार, साबुन आदि डालकर पिटाई करते हैं ताकि साफ सुथरे हो जायें, उनमें केसूड़े का रंग लग जाय।

ऐसे ही अन्तःकरण को जप तप धारणा ध्यान करा के आसक्ति का कचरा निकाल देते हैं ताकि अन्तःकरण में चैतन्य का रंग बराबर प्रकट हो जाय।

जो लोग अपने मन का, इन्द्रियों का थोड़ा संयम कर देते हैं उनका आत्मबल जगता है। बाहर की चीजों के लिए जितना-जितना आग्रह टूटता जाता है उतना-उतना प्रेम व्यापक होता जाता है।

साबरमती के गाँधी आश्रम की घटना है। किसी रात्रि को आश्रम में चोर घुसा। वह कुछ माल-सामान की, चीज-वस्तुओं की सफाई करे, चोरी करे उससे पहले किसी आश्रमवासी की नजर पड़ गई। वह सोया-सोया निहारता था। देखा कि वास्तव में चोर है। धीरे से साथी को जगाया, दूसरे को जगाया, तीसरे को जगाया। चार-पाँच मित्र जगे और चोर को घेरकर पकड़ लिया। थापा-थूपी करके कमरे में बन्द कर दिया।

सुबह में प्रार्थना पूरी हुई, नास्ता आदि सब हो गया। फिर उस चोर को निकाल कर गाँधी जी के पास लाये। आश्रम के संचालक आदि ने सोचा था कि बापू चोर को कुछ सजा देंगे या पुलिस में भिजवा देंगे। गाँधी जी के सामने चोर को खड़ा कर दिया। रात की घटना बतायी।

सब सोच रहे थे कि गाँधी जी अब इसको डाँटेंगे अथवा कुछ सीख देंगे या प्रायश्चित करायेंगे, परंतु गाँधीजी ने जो कहा वह आश्चर्यजनक था। उन्होंने संचालक से पूछाः

"इसने नास्ता किया है कि नहीं किया ?"

"बापू ! यह चोर है।"

"चोर तो है लेकिन मनुष्य तो है न ? यह पहले मनुष्य है कि पहले चोर है ? पहले यह मनुष्य है। इसको भूख लगी होगी। इसको ले जाओ, नास्ता कराओ। बेचारे को भूख लगी होगी।"

बाहर की प्रीति की चीजें तुम्हें अन्दर के राम के साथ प्रीति जोड़ने को कहती हैं और अन्दर के राम की प्रीति फिर चोर का भी कल्याण करने लगती है। उनके द्वारा साहूकार का कल्याण हो जाय इसमें क्या बड़ी बात है ?

वह चोर फूट-फूटकर रोने लगा। पछतावा करने लगा। न डंडे की जरूरत पड़ी, न पुलिस की जरूरत पड़ी न रिमान्ड की जरूरत पड़ी। वह चोर सुधर गया।

प्रेम ऐसी चीज है। अन्यथा, गाँधी जी के पास कौन-सा आडम्बर और फर्नीचर था कि लोग सुधर जाते या उनका कहना मानते, उनके अनुगामी बनते ? अत्यंत सादा जीवन था गाँधी जी का। वे अपने पर आधारित थे।

आप जितना सादा जीवन जीते हैं और आत्मनिर्भर होते हैं उतना आपका आत्मप्रेम, आत्मरस जगता है। आप जितने बाहर की चीजों पर आधारित रहते है उतने भीतर से बेईमान होते चले जाते हैं। अगर आप सच्चे हृदय से प्यार करो तो आपकी एक मुस्कान हजारों आदमियों को उन्नत कर देगी। आपका निर्दोष, निष्कपट हास्य पूरी सभा को उन्नत कर देगा। सबकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होगी। आपका हास्य मात्र पर्याप्त है।

जिन महापुरूषों से लाखों लोग लाभान्वित होते हैं, उन पुरूषों ने क्या तुम्हें ऐहिक वस्तुओं की सुविधा देकर, चापलूसी करके लाभान्वित किया है ? नहीं। वे पुरूष आत्मनिर्भर रहे है, स्वतंत्र आत्मसुख में प्रविष्ट हुए हैं और वह आत्मसुख बाँटने की योग्यता उनमें विकसित हो गई है। वे आत्मसुख से स्वयं सराबोर रहते हैं और उसी में गोता लगाकर निगाह डाल देते हैं या दो शब्द बोल देते हैं तो हजारों-हजारों दिल उनके हो जाते हैं। सारा संसार उनके लिए बदला हुआ मिलता है।

मरने के सब इरादे जीने के काम आये।
हम भी तो हैं तुम्हारे कहने लगे पराये।।

तुम ईश्वर के लिए अगर बाह्य सब चीजों का आकर्षण छोड़ देते हो, ईश्वर प्राप्ति के लिए मरने को भी तैयार हो जाते हो तो तुम्हारी मौत नहीं होगी। तुम्हारे मरने के सब इरादे जीवन में बदल जाएँगे, सब दुःख सुख में बदल जाएँगे। केवल जीवन जीने का ढंग हम जान लें। वह ढंग हमें शास्त्र सिखाते हैं।

शास्त्र का मतलब हैः **"शासनात् शास्त्रम्** - जो शासन करे, कहे कि यह करो, यह मत करो, वह शास्त्र कहलाता है।

मन पर, इन्द्रियों पर शासन करके, सब स्थानों से आसक्ति छुड़वाकर हमें अपने घर पहुँचा दें, अपने आत्मपद में ला दें वे हैं शास्त्र। शास्त्र कोई बोझ ढोने के लिए नहीं हैं।

आज संस्कृत के एक बड़े विद्वान आये थे। आचार्य थे। पहले काशी में रहते थे, आजकल अहमदाबाद की किसी संस्था में रहते हैं। आश्रम के बालयोगी नारायण को भारतीय तर्कशास्त्र, न्यायदर्शन आदि पढ़ाने के लिए सोचा था इस सिलसिले में आये थे। वे कहने लगेः "इनको लघु कौमुदी और मध्यमा तक पढ़ाओ। यह सब रटेंगे तब न्यायशास्त्र आदि पढ़ेंगे। शास्त्र रटना भी तो भजन है।"

मैंने सोचा यह बात तो ठीक है लेकिन रटने का भजन नहीं करवाना है, अब तो रसमय भजन करवाना है। शास्त्र रट-रटकर तो कई खोपड़ियाँ भरी हुई हैं। एक खोपड़ी में नहीं रटा जायगा तो भी काम चल जायेगा।

कोई सोचता है हम इतने शास्त्र रट लेंगे, इतने प्रमाणपत्र पा लेंगे तो हमारा प्रभाव पड़ेगा, हम आचार्य बन जाएँगे, वेदान्ताचार्य, दर्शनाचार्य आदि। आचार्य कहलाने के लिए शास्त्र पढ़ो, मजदूरी करो, इससे तो न पढ़ो वह अच्छा है। सेठ कहलाकर मान पाने के लिए धन कमाओ, मजदूरी करो इससे तो धन थोड़ा कम रहे तो भी अच्छा है। साहब कहलाने के लिए, प्रमोशन पाने के लिए चिंतित रहो इससे तो जहाँ हो वहीं अच्छे हो।

'मेरा पति अच्छा है क्योंकि गहने और वस्त्र-आभूषण अच्छे ला देता है....' ऐसा कहलवाने के लिए ला देते हो तो कोई आवश्यकता नहीं लाने की।

'मेरी पत्नी अच्छी है....' यह कहलवाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के गरमागरम चरपरे व्यंजन-पकवान-वानगियाँ, अधिक तेल-मिर्च-मसालेवाले पदार्थ पति को खिलाओगे तो इससे पति का भी सत्यानाश होगा और पत्नी का भी सत्यानाश होगा।

परिवार में आप एक दूसरे के आध्यात्मिक साथी बन जाओ, आत्मसुख की ओर उन्नति करने के लिए एक दूसरे को सहयोग दो। एक दूसरे के सच्चे सुहृद, सच्चे हितैषी हो जाओ। पत्नी सोचे कि कौन-से भोजन से मेरे पति का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, फिर वैसा ही भोजन बनाया करे। जो पत्नी चाहे कि अपने पति का स्वास्थ्य अच्छा रहे, मनोबल विकसित हो, विचारबल विकसित हो, प्राणबल विकसित हो, पति की साधना में उन्नति हो, और उसके अनुरूप आचरण करे तो वह पत्नी के साथ-साथ श्रेष्ठ मित्र भी हैं और श्रेष्ठ गुरू भी है।

जो पति चाहे कि पत्नी आत्मनिर्भर रहे, विकारी सुख नहीं अपितु निर्विकारी आत्मसुख की ओर चले, इसके लिए उसे पवित्र स्थानों में ले जाय, पवित्र चिन्तन कराये, आत्मसुख में प्रीति जगाये, हल्के विचार कम करने में सहयोग दे वह पति उस नारी के लिए पति भी है, गुरू भी है और परमात्मा भी है।

परस्पर हितैषी हो जाओ, बस। जो प्रेम व्यक्ति में केन्द्रित रह जाता है वह आत्म-केन्द्रित हो जाय, बस। आत्म-केन्द्रित माने क्या ? स्व-केन्द्रित या स्वार्थी ? नहीं। जो प्रेम शरीर में है वह शरीर जिससे प्रेमास्पद लगता है उसकी तरफ प्रेम हो तो पति-पत्नी का सम्बन्ध बड़ा मधुर सम्बन्ध है। भारत के दूरदर्शी, परम हितैषी महान् आत्माओं का कहना है कि शादी करनी चाहिए, दो चार बच्चों को जन्म देना चाहिए।

जो लोग शराबी कबाबी हैं वे लोग चाहे मँगनी से पहले ऑपरेशन करा लें किन्तु जो लोग भगवान का भजन करते है, जप करते हैं, ध्यान करते हैं उन्हें कभी ऑपरेशन नहीं कराना चाहिए। उन्हें संयमी जीवन जीना चाहिए। दो-चार बच्चे हों। एकाध देश की सीमा पर हो, फौज में काम आ जाय, एकाध समाजसेवा में हो। देश को ऐसे बच्चों की जरूरत है।

दिव्य आत्माएँ धरती पर आना चाहती हैं लेकिन हमारे अन्तःकरण दिव्य हों तब न ? आप जितना-जितना उन वस्तुओं से उपराम होते जाते हो उतना-उतना अन्तःकरण उन्नत होता जाता है और उतनी उन्नत आत्माएँ आपके घर अवतरित होने को तैयार होती हैं। ऐसी पवित्र आत्माएँ आमंत्रित करने से ही देश की सच्ची सेवा हो सकती है, विश्व की सेवा हो सकती है। नारायण.... नारायण..... नारायण..... नारायण....।

श्रीमद् भागवत में आया है कि आचार्य में सब देवों का निवास होता है। आचार्य कौन हैं ? जो तुम्हारे मन को ईश्वर की तरफ लगा दें, तुम्हारी निम्न वासनाओं को हटाकर प्रियतम परमात्मा की तरफ मोड़ दें।

आचार्य में पूज्यबुद्धि होने से तुम्हारा अन्तःकरण पावन बनता है। आचार्य के उपदेश को आदर से, स्नेह से सुनकर अपने जीवन में लाने का जीवन उन्नत होता है। भगवान ने भागवत में कहा हैः

आचार्यं मां विजानीयात्।।

(11.17.26)

'मुझे ही आचार्य जानो।'

उन आचार्यों का पूर्वजीवन देखो तो उन्होंने संध्या-उपासना-जप-तप-यज्ञयागादि किये हैं, पुण्य कर्म किये हैं। धारणा-ध्यान-समाधि आदि योगाभ्यास किया है, उन्नत बने हैं, तभी वे आचार्य हुए हैं।

उन्नति किसी व्यक्ति के पास, किसी दायरे में, किसी सम्प्रदाय में या समाज में ही होती है ऐसी बात नहीं है। उन्नति तो जो चाहे कर सकता है। आपके अन्दर जो उन्नति करने के दृढ़ संकल्प हैं वे ही संकल्प देर-सवेर आपके लिये उन्नति की सामग्री पूरी करेंगे। हाँ, अगर आप सचमुच उन्नत होना चाहो तो। आप विलासी जीवन जीकर सुखी होने की गड़बड़ करते हो तो वैसी जगह आपको मिलेगी। आप दिव्य जीवन जीना चाहते हो तो वैसी जगह आपको मिलेगी। आप दिव्य जीवन जीना चाहते हो तो देर-सवेर वही वातावरण और वही सामग्री खिंचकर आयेगी क्योंकि तुम्हारा मन सत्य-संकल्प आत्मा से स्फुरित होता है। इसलिए कृपानाथ ! जो भी संकल्प करो वह विलासियों को देखकर नहीं, आडम्बरियों को देखकर नहीं, विकरारियों को देखकर नहीं, बाहर से जो खुशहाल नजर आते हैं और भीतर से चिन्ता की आग में पचते हैं ऐसे लोगों को देखकर नहीं, विकारियों को देखकर नहीं, बाहर से जो खुशहाल नजर आते हैं और भीतर से चिन्ता की आग में पचते हैं ऐसे लोगों को देखकर नहीं। आप तो शंकराचार्य को, कबीरजी को, नानकजी को, बुद्ध को, महावीर को, शबरी को, मीरा को, गार्गी को, मदालसा को, रामतीर्थ को, रामकृष्ण को, रमण महर्षि को, लीलाशाह भगवान को याद करके अपना संकल्प करो कि मेरे ऐसे दिन कब आएँगे जब मैं आत्मनिर्भर हो जाऊँगा। कोई वस्त्र नहीं फिर भी कोई परवाह नहीं गार्गी को। शुकदेव जी की कौपीन का ठिकाना नहीं, ऐसे बेपरवाह और आत्मसुख में डूबे हुए सात दिन में परीक्षित को आत्म-साक्षात्कार करा दिया।

जनक के पास इतनी सारी सामग्री है फिर भी कोई आसक्ति नहीं। बिल्कुल अनासक्त योग।

वस्तुएँ त्यागने को मैं नहीं कहता। वस्तुएँ बढ़ाने को भी मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि तुम्हारा और वस्तुओं का ऐसा सम्बन्ध है कि जैसे बच्चे को चालनगाड़ी दी जाती है। तुम्हारा और संसार का ऐसा सम्बन्ध है कि जैसा तुम्हारे शरीर और कपड़ों का।

कपड़े तुम्हारे लिए हैं, तुम कपड़ों के लिए नहीं हो। वस्तुएँ तुम्हारे लिए हैं, तुम वस्तुओं के लिए नहीं हो। भगवान का भक्त होकर टुकड़ों की चिन्ता करे ?

आज मनुष्य की इतनी बेईज्जती हो गई है कि क्या बताएँ....। मुर्गी के बच्चे बढ़ाने के लिए देश लाखों-करोड़ों रूपये खर्च कर रहा है। मछली के बच्चों का विकास करने के लिए करोड़ों रूपये दिये जा रहे हैं लेकिन मनुष्य के बच्चों का नाश करने के लिए करोड़ों रूपये लगाये जा रहे हैं। मुर्गी के बच्चे चाहिए, मछली के बच्चे चाहिए लेकिन मनुष्य के बच्चों का कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य इतना तुच्छ हो गया ? इतना असंयमी, विलासी हो गया ? उसको जन्म लेने से रोकने के लिए करोड़ों रूपये खर्च करना पड़े ? इन्सान के बच्चे की कीमत नहीं रही।

क्यों ?

क्योंकि इन्सान अपने संयम से, अपने सदाचार से, अपने आत्मसुख और आत्मज्ञान के मार्ग से च्युत हो गया, गिर गया। सरकार बेचारी क्या करे ? नारायण..... नारायण...... नारायण....।

भगवान महावीर के जमाने में पुष्य नाम का एक बड़ा सुप्रसिद्ध ज्योतिषी हो गया। उसका ज्योतिष इतना बढ़िया रहता था कि उसको अपने ज्योतिष विषय पर पूरा विश्वास था। देशदेशान्तर से लोग उससे पूछने आते थे। वह जो कह देता, अक्षरशः सच्चा पड़ जाता। लोगों के पदचिह्न की रेखाएँ देखकर भी वह लोगों की स्थिति बता सकता था। ऐसा बढ़िया कुशाग्र ज्योतिषी था।

उन दिनों में वर्धमान (बाद में महावीर हुए) घर छोड़कर दिन में तो विचरण करते और संध्या होती, रात पड़ती तो एकान्त खोजकर बैठ जाते। थोड़ी देर आराम कर लेते फिर सन्नाटे बैठ जाते चुपचाप, ध्यान में स्थिर हो जाते।

पुष्य ज्योतिषी ने देखा कि रेत पर किसी के पदचिह्न हैं। पदचिह्नों को ज्योतिष विद्या से परखा तो जाना कि ये तो चक्रवर्ती के हैं। चक्रवर्ती अगर यहाँ से गुजरा है तो साथ में मंत्री होने चाहिए। सचिव होने चाहिए, अंगरक्ष्क होने चाहिए, सिपाही होने चाहिए। पदचिह्न चक्रवर्ती के और साथ में कोई झमेला नहीं यह सम्भव नहीं हो सकता। पुष्य ज्योतिषी को अपनी ज्योतिष विद्या पर पूरा भरोसा था। उसकी नींद हराम हो गयी। चाँदनी रात थी। जहाँ तक चल सका पदचिह्न देखता हुआ चला, फिर वहाँ ठहर गया। फिर सुबह-सुबह जल्दी चलना चालू किया। खोजना था, पदचिह्न कहाँ जा रहे हैं। देखा कि बिना कोई साधन के, एक व्यक्ति शांत भाव में बैठा हुआ है। पदचिह्न वहीं पूरे होते हैं। इर्दगिर्द देखा, चेहरे पर देखा। महावीर की आँख खुली। ज्योतिषी चिन्ता में डूबता जा रहा था। महावीर से पूछाः

"ये पदचिह्न तो आपके मालूम होते हैं ?"

"हाँ।"

"मुझे अपने ज्योतिष पर भरोसा है। आज तक मेरा ज्योतिष झूठा नहीं पड़ा। पदचिह्नों से लगता है कि आप चक्रवर्ती सम्राट हो। लेकिन आपका बेहाल देखकर दया आती है कि आप भिक्षुक हो। मेरी विद्या आज झूठी कैसे पड़ी ?"

महावीर मुस्कराकर बोलेः "तुम्हारी विद्या झूठी नहीं है, सच्ची है। चक्रवर्ती को क्या होता है ?"

"उसके पास ध्वजा होती है, कोष होता है, उसके पास सैन्य होता है। आप तो ठनठनपाल हैं।"

"धर्म की ध्वजा मेरे पास है। कपड़े की ध्वजा ही सच्ची ध्वजा नहीं है। सच्ची ध्वजा तो धर्म की ध्वजा है। मेरे पास सदविचाररूपी सैन्य है जो कुविचारों को मार भगाता है। क्षमा मेरी रानी है। चक्रवर्ती के आगे चक्र होता है तो समता मेरा चक्र है, ज्ञान का प्रकाश मेरा चक्र है। ज्योतिषी ! क्या यह जरूरी है कि बाहर का चक्र ही चक्रवर्ती के पास हो ? बाहर की ही ध्वजा हो ? धर्म की भी ध्वजा हो सकती है। धर्म का भी कोष हो सकता है। ध्यान और पुण्यों का भी कोई खजाना होता है।

राजा वह जिसके पास भूमि हो, सत्ता हो। सुबह जो सोचे तो शाम को परिणाम आ जाय। ज्ञानराज्य में मेरी निष्ठा है। जो भी मेरे मार्ग में प्रवेश करता है, सुबह को ही चले तो शाम को शांति का एहसास हो जाता है, थोड़ा बहुत परिणाम आ जाता है। यह मेरी ज्ञान की भूमि है।"

जो ज्योतिषी हारा हुआ निराश होकर जा रहा था वह सन्तुष्ट होकर, समाधान पाकर प्रणाम करता हुआ बोलाः

"हाँ महाराज ! इस रहस्य का मुझे आज पता चला। मेरी विद्या भी सच्ची और आपका मार्ग भी सच्चा है।"

कभी-कभी लोग अपने हाथ दिखाते हैं कि मुझे भगवत्प्राप्ति होगी कि नहीं। भगवत्प्राप्ति हाथ पर नहीं लिखी होती।

मेरे गुरूदेव बड़े विनोदी स्वभाव के थे। एक बार बम्बई में समुद्र किनारे सुबह को घूमने निकले। कोई ज्योतिषी अपने ग्राहक को पटा रहा था। बाबाजी भी ग्राहक होकर बैठ गयेः भाई, मेरा हाथ भी देख ले।

मौज फकीरों की भी !

वह ज्योतिषी बोलता था कि तुम अपने मन में किसी भी फूल का स्मरण करो। मैं आपको यह फूल बता दूँ। वह बता देता था और सामने वाले को श्रद्धा हो जाती थी। फिर वह जो बोलता था वह सामने वाले को लगता था कि सच्चा है। दो बातें ज्योतिषी की या और किसी की अगर सच्ची लग जाती है तो तीन बातें उसमें और भी मिश्रित हो सकती हैं।

गिरनार के मेले में कई भिखमंगे ज्योतिषी बन जाते हैं। वेश बना लेते हैं, दाढ़ी-बाल बढ़ा लेते हैं, जोगी का रूप धारण कर लेते हैं। पावड़िया चड़ते हुए किसी को बोलते हैं-

"भगत ! भगवान ने दिल दिया लेकिन दौलत नहीं दिया। जिसकी तुम भलाई करते हो, वहाँ से बदला बढ़िया नहीं आता है।"

सर्व साधारण यह बात है। सब चाहते हैं कि भलाई थोड़ी करें बदला ज्यादा मिले। ऐसा तो होती नहीं। 'दिल है, दौलत नहीं....' अगर दौलत होती तो पैदल हाँफता-हाँफता क्यों जाता ? कपड़ों से ही पता चला जाता है कि, 'दिल दिया है, दौलत नहीं दिया।' लोग ऐसे फुटपाथी ज्योतिषियों के ग्राहक बन जाते हैं। ऐसे ज्योतिषी तोते-मैना-काबरों को, चिड़ियाओं को पालकर पिंजरे में रखते हैं। लिफाफों में अलग-अलग बातें जो सर्व साधारण सब मनुष्यों की होती हैं वे लिखी हुई होती हैं। तुम्हारी राशि ऐसी है..... अमुक ग्रह की कठिनाई है.... ऐसा-ऐसा करो तो ठीक हो जायेगा..... आदि आदि।

उस ज्योतिषी ने बाबाजी से कहाः "महाराज ! अपने मन में किसी फूल की धारणा कर लो।"

"हाँ, कर ली।"

"महाराज ! आपके मन में गुलाब का फूल है।"

"ज्योतिषी महाराज ! बिल्कुल सच्ची बात है।"

गुरूदेव ने सचमुच में गुलाब को याद किया था। लोग गुलाब को याद करें यह स्वाभाविक है। फूलों को याद करो तो पहले गुलाब आ जायेगा।

ऐसे ही साधक अगर किसी को याद करे तो गुलाबों का गुलाब परमात्मा याद आ जाय। कुछ भी करना है तो परमात्मा को पाने के लिए करें, उसको संतुष्ट करने के लिए करें। ....तो उसके लिए परमात्मा दुर्लभ नहीं।

तस्याहं सुलभः पार्थ।

'हे पार्थ ! ऐसों के लिए मैं सुलभ हूँ।'

ज्योतिषी ने बड़ी सूक्ष्मता से बाबाजी का हाथ देखकर बताया किः "आप भगवान के लिए साधू बने हो, खूब तप किया है फिर भी अभी तक भगवान मिले नहीं हैं। आप तपस्या चालू रखोगे तो सफल हो जाओगे।"

गुरूदेव बोलेः "भगवान मिला नहीं क्या ? भगवान तो हमारा अपना आपा है।"

भगवान की मुलाकात तो गुरूदेव को करीब पचास वर्ष पहले हो चुकी थी, आत्म-साक्षात्कार हो चुका था, भगवत्प्राप्ति हो चुकी थी। हाथ देखकर ज्योतिषी अभी बता रहा है कि, 'भगवान मिले नहीं हैं। तपस्या चालू रखोगे मिल जाएँगे।'

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवत्प्राप्ति हो गई है कि नहीं, यह हाथ पर नहीं लिखा होता अथवा ललाट से नहीं दिखेगा। हस्तरेखाओं से यह बात नहीं जानी जाती। अगर ईश्वर-प्राप्ति की तत्परता है, तीव्र लगन है तो ईश्वर-प्राप्ति जरूर हो जायेगी। संसार की तुच्छ चीजें सँभालने की तत्परता है तो ईश्वर-प्राप्ति नहीं होगी।

वास्तव में भगवान की अप्राप्ति है ही नहीं। भगवान तो अपना आपा है। संसार की आसक्ति मिटी तो वह प्रकट हो गया। संसार की आसक्ति बनी रही तो जीव फँसा रहा। कोई

ज्योतिषी आपका हाथ देखकर बता दे कि भगवत्प्राप्ति होगी या नही होगी तो यह बिल्कुल बेवकूफी की बात है। ज्योतिषी का दम नही यह बता देने का। वहाँ ज्योतिष विद्या की गति नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति विषयक जानने के लिए ज्योतिषियों को अपनी हस्तरेखाएँ बताने की कोई जरूरत नहीं है।

भगवान हमें मिलेंगे ही यह दृढ़ विश्वास, संकल्प और श्रद्धा रखकर साधना करो, भगवान के लिए ही कार्य करो, उसको रिझाने के लिए ही जीवन जियो, उसको पाने के लिए ही आयु बिताओ। बस, तुम्हारी यह दृढ़ता ही भगवत्प्राप्ति का कारण है। भगवत्प्राप्ति को ज्योतिष से कोई मतलब नहीं, उसे तो तुम्हारी तत्परता से, दृढ़ता से और तीव्र जिज्ञासा से मतलब है।

ईश्वर के नाते आप जिओ। पत्नी से स्नेह करो लेकिन ईश्वर के नाते स्नेह करो। पति से स्नेह करो लेकिन ईश्वर के नाते स्नेह करो। दोनों की उन्नति हो इस भावना से स्नेह करो। बेटे से खूब स्नेह करो, बेटी से भी स्नेह करो लेकिन स्नेह करते-करते स्नेह जहाँ से पनपता है, प्रकट होता है उस स्नेह-स्वरूप प्रभु में भी जरा गोता मारो तो बेटी की भी उन्नति, माँ की भी उन्नति, बेटे की भी उन्नति, बाप की भी उन्नति, और बाप के बाप की भी उन्नति, सबकी उन्नति हो जायगी। उन्नति जीवन जीने का तरीका यह है।

....तो आज का भागवत का श्लोक कहता हैः

'चित्त और इन्द्रियों का संयम करके जगत को अपने में देखना और अपने व्यापक आत्मा को परमात्मा में देखना चाहिए।'

जैसे बाहर का पानी अपने बोर में डालो, बोर गहना बनाओ, फिर अपने बोर का पानी बाहर विस्तृत कर दो। ऐसे ही जगत को प्रेम से अपने में देखो और अपना प्रेम इतना व्यापक करो कि पूरे जगत में फैले जाये। लोग चोर को पकड़कर लाये हैं तो गाँधी बोलते हैं, इसने नास्ता किया है कि नहीं ? इसे नास्ता कराओ, बाद में दूसरी बात।

यह प्रेम है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वेदमालि ब्राह्मण की आत्मोपलब्धि

रैवत मन्वंतर की बात है।

वेदमालि नाम का एक ब्राह्मण वेदाध्ययन करके अपने गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट हुआ। वेदाध्ययन किया था, गुरू की सेवा की थी, शास्त्रों को ठीक से समझा था। उसका जीवन थोड़ा-बहुत परहित में पनपने लगा। समय पाकर उसको दो बेटे हुएः सुमालि और यज्ञमालि।

वेदमालि ब्राह्मण गुरू के द्वार पर था तब ठीक था, शादी की तब ठीक था पर जब बेटे हुए तब, जो प्रेम परमात्मा के नाते करना चाहिए वह भूल गया। 'मेरे बेटे....।' मोह ठोस हो गया। 'मेरे बेटों को इतना धन हो.... इतना धन हो कि वे धनवान कहलाएँ....' केवल इस छोटी सी तृष्णा ने उस ब्राह्मण के ज्ञान को ढँक दिया।

वेदमालि भागवत की कथा करता। कथा में अधिक धन मिले इसलिए कथा के विभिन्न प्रसंगों को बड़ी धूमधाम से मनवाता था।

कोई भी कथाकार रामायण की कथा करता है तो जानकी विवाह के प्रसंग में कन्यापक्ष और वरपक्ष खड़े हो जाते हैं। जब राम-वनवास का प्रसंग आता है तब कोई सेठिया भी साथ नहीं देता और कोई ब्राह्मण भी वनवास में राम के साथ नहीं जाता। यह कथा के साथ बेईमानी है।

वेदमालि ब्राह्मण कथा को बेचने की धरती पर उतर आया। **अर्थी दोषो न पश्यति।**

वास्तव में शास्त्र मन-बुद्धि को संयत करके परमात्मा में लगाने के लिए है। कथा करने वाले को व्यास कहा जाता है। व्यास का मतलब है हमारी बिखरी हुई वृत्तियों को व्यवस्थित करके उस परमात्मा की तरफ ले जाय। जो हमारी वृत्तियों को आध्यात्मिक आचरण कराने का सामर्थ्य रखते हैं उनको आचार्य कहा जाता है। जो हमें परमात्मा के साथ मिलाने का काम करें उनको सदगुरू कहा जाता है। जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने का सामर्थ्य रखते हैं वे सदगुरू हैं। जो आध्यात्मिक अनुभव करा दें वे गुरू हैं। कोई गुरू होते हैं, कोई आचार्य होते हैं, कोई व्यास होते हैं। कभी-कभी एक ही व्यक्ति में व्यासत्व भी दिखता है, आचार्यत्व भी दिखता है और गुरूत्व भी दिखता है। यह उन्ही पुरूषों में दिखता है जो कथा को, शास्त्र को कथा और शास्त्र ही रखते हैं, शस्त्र नहीं बनाते हैं। कई लोग कथा और शास्त्र को शस्त्र बना लेते हैं - धन कमाने का शस्त्र, प्रतिष्ठा कमाने का शस्त्र।

ऐसे लोग सदगुरू नहीं हैं। सदगुरू वे होते हैं जो बराबर व्यवस्था करके अपना जीवन उन्नत रखें और दूसरों का जीवन भी उन्नत कर दें। ऐसे सदगुरू हैं भगवान वेदव्यासजी, कबीर, नानक, लीलाशाह भगवान, और कई नामी-अनामी, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता महापुरूष।

वेदमालि ब्राह्मण व्यासपीठ पर तो बैठता था लेकिन ठीक व्यास नहीं बन पाया। उसकी दृष्टि अर्थलोलुप हो गई। जैसे, गीध खूब ऊँचा उड़े लेकिन उसकी निगाह धरती पर मरे हुए पशु को खोजे ऐसे ही वेदमालि बातें ऊँची-ऊँची सुना देता था लेकिन कथा में लक्ष्य विभिन्न निमित्तों से धन-संचय बढ़ाने का रहता था। जैसे, जानकी विवाह में इतना कन्यादान दो..... इतनी रकम देकर आरती करवाओ.....रुक्मिणी की चूड़ियाँ और कटिमेखला के लिए इतना सोना दो..... कृष्ण कन्हैया के लिए चाँदी का मुकुट बनवाओ.....' आदि आदि। इस प्रकार कथा को साधन बनाकर वेदमालि ब्राह्मण अपनी धन लोलुपता को पोसने लगा। धीरे-धीरे उसने अपने व्रत भी बेच दिये, अपने नियम भी बेच दिये। प्रचुर मात्रा में धन इकट्ठा कर लिया।

धन बढ़ने से अगर सुख बढ़ जाता तो धनवान सब सुखी होते। धन बढ़ने से अगर मुक्ति मिल जाती तो सब धनवानों का मोक्ष हो जाता। हमने सुना है कि आदमी ईश्वर का रास्ता नहीं पकड़ता है तो धन से रोग, चिन्ता, दुश्मनी बढ़ती है और नर्कों में जाने का नेशनल हाइवे बनता है।

अगर धन और सत्ता से मुक्ति मिलती तो रावण और दूसरे लोगों को अशांति नहीं होनी चाहिए।

धन बुरा भी नहीं और अच्छा भी नहीं। उसमें कुछ बुराइयाँ कुछ अच्छाइयाँ दोनों छुपी हैं। आप अगर सत्संग से लाभान्वित होते हो तो धन की अच्छाइयों का फायदा उठाकर अच्छे में अच्छा जो परमात्मा है वहाँ तक पहुँचते हो और आप सत्संग के मार्ग पर नहीं है और बाह्य चीजों को महत्त्व देते हो तो वे चीजें आपकी शांति को, आपके ज्ञान को, आपकी विद्वता को, सबको दबाकर आपको गुलाम बना देती हैं।

वेदमालि के चित्त में धन की लोलुपता बढ़ती गई।

लोग समझते हैं कि इतना धन हो जायगा फिर शांति मिल जायगी, हमारी इच्छा पूरी हो जायगी। नहीं, इतना मिलने पर इच्छा फिर और बढ़ जाती है। 'इतना मकान हो जाय, दो कमरे और एक रसोईघर, फिर आराम।' अगर इतना हो जाने के बाद आराम हो जाता हो तो आपके पैर छू लूँ, लेकिन आराम नहीं होता, शांति नहीं होती। जब तक उतना नहीं हुआ तब तक लगता है कि हो जायगा तब शांति होगी। जब उतना हो जाता है तब फर्नीचर आवे तो शांति। फर्नीचर आता है, ज्यादा बढ़ जाता है तब लगता है एक कमरा अधिक हो जाय तो शांति। एक कमरा बढ़ा दिया फिर छत पर कमरे बन जायें तो शांति। ऐसा मनुभाई (मन) का खेल है।

माया ऐसी नागिनी जगत रही लिपटाय।
जो उसकी सेवा करे तिस को ही फिर खाय।।

वेदमालि ब्राह्मण की तृष्णा दिन दूना रात चौगुना बढ़ती गई। धन खूब इकट्ठा हुआ। एक दिन समय निकालकर अपना कोष देखने लगा। बच्चों को मामा के घर भेज दिया। जाँचने लगा कि कितने मुकुट एकत्रित हुए, कितनी अँगूठियाँ एकत्रित हुईं, कितनी रूक्मिणी की चूड़ियाँ आयीं, आदि आदि। ये रूक्मिणी की चूड़ियाँ खाक हैं ? अब तो हमारी हैं।

'इतना सोना, इतना चाँदी, इतना जवाहरात, इतने रूपये-पैसे, आहाहा... बहुत धन.... बहुत धन....।'

उन दिनों में इन्कमटेक्स के चोपड़े नहीं रखने पड़ते थे।

वेदमालि के दिल में हुआ कि आहाहा..... ! खूब धन कमाया। हाश ! इतना सारा धन है !

पूर्व काल में उसने गुरू के चरणों में बैठकर वेदों का अध्ययन किया था, शास्त्रों का विचार किया था। थोड़ा शांत हुआ तो अनजाने में उसकी वृत्ति थोड़ी गहरी चली गई। सोचा किः

"इतना धन तो है लेकिन यह धन....? मेरे साथ तो नहीं चलेगा। इतनी सारी चूड़ियाँ... इतने सारे मुकुट.... इतनी सारी अँगूठियाँ...... इतना सारा सोना.... इतना सारा जवाहरात..... आहाहा....!!"

गहराई में अजामिल की तरह कुछ पुण्य-पुञ्ज भी था और कुछ सन्नाटा मिल गया, पुत्र-परिवार से अलग होकर, छुपकर धन गिनने का प्रोग्राम था।

"अहाहा....! इतने सारे चाँदी के रूपये.....!! लेकिन ये मेरे साथ तो नहीं आयेंगे। मरूँगा तो मैं अकेला मरूँगा। लोग अर्थी उठाकर ऐसा नहीं बोलेंगे किः "इतना सोना संग है.... इतनी अँगूठियाँ संग हैं.... इतने चाँदी के रूपये संग हैं....।" नहीं। लोग बोलेंगे-' रामनाम संग है.... सतनाम संग है....। रामनाम सत है.... आखिर यही गत है। 'मैं मरूँगा तो लोग मुझे सुनाएँगे कि आखिर यह गत है।' अरेरेरे.....! मैंने वेद को, भागवत को, रामायण को, ज्ञान को, भक्ति को बेच दिया। नश्वर चीजें कमाया और आयु बीत गई। छप्पन वर्ष हो गये।"

पचास के बाद तो वनवास-जीवन होना चाहिएः एकावन..... बावन..... आदि अंक यही प्रेरणा देते हैं। कब तक संसार में कुचलाते रहोगे ? 'इसके लिये काम करना है.... उसके लिये प्रचार करना है.... चुनाव आ रहा है....' अरे मरने दो चुनाव को। चुनाव तो आता रहेगा और जाता रहेगा। एक दिन यह शरीर नहीं रहेगा उसका क्या ?

'फलाने भाई को चुनाव में जिताना है...... हमारी पार्टीवाला है.....' अरे, तुम्हारी पार्टीवाला ब्रह्म है, परमात्मा है। पहले उसका आदर करो, बाद में और सब। संसारीजन तो सदा आपको संसार की मजदूरी में ही लगाये रखेंगे। कभी नहीं छोड़ेंगे मुक्त होने के लिए।

आज की पत्नी कहती हैः You are my husband. तुम्हारी संपत्ति और आय की मैं अर्धांगिनी हूँ। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। तुम्हारी मिल्कियत में मेरा हिस्सा है। पति बोलता हैः तू मेरी पत्नी है। सेवा करना तेरा फर्ज है। समय पर भोजन और कपड़े तैयार रखो। बेटा बोलता हैः मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तुम्हारी संपत्ति का वारिस मैं हूँ, मुझे दो। मित्र बोलता हैः तुम मेरे साथी हो। मेरे लिए मर मिटो। मेरी इच्छाओं को पूरी करने में अपना समय स्वाहा कर दो। पार्टी वाले बोलते हैं- तुम हमारी पार्टी के हो। हमारी पार्टी का प्रचार करो, हमारी पार्टी में चाहे कितने ही डाकू छुपे हों, कोई बात नहीं। प्रचार हमारी पार्टी का ही करो। मजहबवादी बोलते हैं किः तुम हमारे मजहब के हो। चाहे हमारे मजहब में कितने ही आतंकवादी हों फिर भी 'इस्लाम खतरे में है....' करके उठाओ डंडा। हमारे मजहब पर चलो। दूसरे चाहे कैसे भी हों, कहीं के भी हों। पौराणिक लोग बोलते हैं किः तुम जीव हो और हमारे सम्प्रदाय के हो। तुम शैव हो, शाक्त हो, तुम वैष्णव हो, तुम हवेली वाले हो, तुम हमारे धर्मवाले हो..... इसलिए तुम्हारा धर्म है कि साल में अमुक दक्षिणा इधर दो।

लेकिन भगवान कहते हैं- तुम मेरा अंश हो।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

'इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है।'

(भगवद् गीताः 15.7)

ब्रह्मवेत्ता सदगुरू बोलते हैं- हे चेतन ! तुम आत्मा हो, अमर हो। अपने आत्मा-परमात्मा को पहचान कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ।

अब तुम चाहे भगवान और भगवत्प्राप्त सदगुरू की बात मानकर, ज्ञान पाकर मुक्ति का अनुभव करो अथवा श्रीमती की बात मानकर गाड़ी खींचो अथवा पति की बात मानकर भोग की मशीन बन जाओ। अथवा नेताओं की बात मानकर इन्कलाब जिन्दाबाद करो। अथवा मजहब की बात मानकर डंडे उठाते घूमो। मर्जी तुम्हारी है।

लेकिन वेदान्त सत्य कहता है कि न तुम पत्नी के हो न तुम पति के हो, न तुम बच्चों के हो न तुम पार्टी के हो न तुम मजहब के हो। तुम तो हो परमात्मा के और परमात्मा है तुम्हारा। उसकी एक बार मुलाकात कर लो फिर तुम सबके हो और सब तुम्हारे हैं।

मुझे तो यह ज्ञान सच्चा लगता है, अच्छा लगता है। आपको जो सच्चा लगे, अच्छा लगे, आप स्वतंत्र हैं।

वेदमालि ब्राह्मण सोच रहा है कि आखिर यह सब माल छोड़कर मरना पड़ेगा। अब क्या करूँ ?

उसने पुत्रों को बुलाया। धन-संपत्ति के चार हिस्से किये। एक हिस्सा पुत्र को दिया, दूसरा हिस्सा दूसरे को दो। दो हिस्से अपने लिए रखे। कुछ बोझ हलका हुआ तो लगा कि हाश ! इतनी चिन्ता मिटी। विद्याध्ययन के समय किसी आचार्य के चरणों में बैठा था न !

पूर्व का सदविचार जग आया।

भागवत में अजामिल की कथा आती है। उसने पूर्व जीवन में सत्कर्म किये थे, बाद में दुराचारी हो गया था। संतों के वचन से अपने बेटे का नाम नारायण रखा। मरते समय 'नारायण.... नारायण....' करते उसके पूर्व के सत्कर्मों की पूँजी फिर से खिली।

आपने पहले धन कमाया फिर धन चला गया। तो जरूरी नहीं कि मरते समय धन आ जाय। पहले सत्तावान थे, सत्ता चली गई तो मरते समय फिर कुर्सी मिल जाय यह असंभव है। नेता सोचे कि हम बीस साल तक उसी कुर्सी पर रहे, समाज की सेवा की। अब कुर्सी नहीं रही तो मरते समय वह आ जाय यह संभव नहीं।

लेकिन आपने पहले भजन किया, जप तप किये, साधना की, योगाभ्यास किया। फिर बीच में सब छूट गया तो मरते समय भी भजन का प्रभाव आकर खड़ा हो जाता है। यह भजन का प्रभाव है, भगवान की महिमा है।

जीवनभर हम धनाढय रहे लेकिन बुढ़ापे में गरीब हो गये तो मरते समय फिर धन की तिजोरियाँ आकर खड़ी हो जायें यह असंभव है।

जीवनभर आप दाता रहे, अंतिम समय में कंगाल हो गये तो मरते समय दान देने के लिये, दाता बनने के लिए फिर धन आ जाय यह संभव नहीं।

जीवनभर आपने भजन किया। फिर आप दुराचार में आ गये। मरते समय पूर्व में जो भजन किया है उसका प्रभाव जरूर प्रकट हो जाता है। अपनी भलाई किसमें है यह आप अब ठीक से समझ गये। हमें यह कहने की जरूरत नहीं कि तुम भजन की पूँजी कमाओ। हमें यह कहने की जरूरत नहीं कि तुम चैतन्य हो और परमात्मा को मिलने के लिए आये हो। क्योंकि यह सच्ची बात है। नहीं कहूँ तभी भी आप समझते हो। मैंने तो केवल इशारा कर दिया। अब....

यथेच्छसि तथा कुरू।

जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो। हम किसी पर दबाव नहीं डालते हैं। हम तो केवल तुम्हें जगाते हैं। फिर खड्डे में गिरो ऐसा हम क्यों कहें ? खड्डे से बच निकलोः ऐसा भी क्यों कहें ? आँखें तुम्हारे पास हैं, दीया तुम्हारे पास है और मुझे तुम पर भरोसा है। खड्डों को तुम देख सकते हो, सही रास्तों को तुम देख सकते हो। इसलिए बाँहें चढ़ाकर अपने को सताने के लिए खड्डों में नहीं गिरोगे।

"कहाँ जा रहे हो भाई !"

"बस जा रहे हैं, उसकी टाँग खींचने के लिए।"

अरे भाई ! जानबूझकर खड्डों में क्यों गिरना ? हमें तो समय बचाकर ऊँचे शिखर सर करने हैं।

वेदमालि ब्राह्मण ने अपना बोझ थोड़ा उतार दिया। दो हिस्से बच्चों को दे दिये, दो हिस्से अपने पास रखे। फिर सोचाः यह धन कमाने में जो पाप हुआ, इसको एकत्रित करने में जो समय का भोग दिया उसका उपाय सोचना चाहिए। दो हिस्सों में ऐसा फायदा उठाना चाहिए कि खोयी हुई भीतरी पूँजी पुनः हासिल कर सकूँ।

वेदमालि ब्राह्मण आधी सम्पत्ति बच्चों को बाँट गया, आधी अपने साथ लेकर घर से निकल पड़ा। कुछ मित्रों के पास रख दी, बाकी की साथ ली। गंगा किनारे यात्रा करता-करता वह हरिद्वार से कुछ ऊपर और ऋषिकेश से कुछ नीचे एक आश्रम में पहुँचा। उस आश्रम की शोभा देखते ही बनती थी। कुछ दिन वहाँ रहा। यथायोग्य सेवा ली और यथायोग्य सेवा की। फिर आगे चला।

चलते-चलते वेदमालि ब्राह्मण जानन्ति मुनि के आश्रम में पहुँचा। गंगा के किनारे, पर्वतमालाओं के बीच सुन्दर, सुहावना, विशाल वह आश्रम था। फलों से लदे हुए वृक्ष आश्रम की शोभा बढ़ा रहे थे। पक्षियों की मधुर किलोल हो रही थी। ऋषि-मुनि अपना वेदाध्ययन करते थे। तपस्वी अपना तप करते थे। वेदपाठी वेदपाठ करते थे। सबका अपना अलग-अलग विभाग था। सुबह और शाम सब लोग एकत्रित होते थे। सुबह ब्रह्मविचार होता था, ब्रह्मसूत्र की चर्चा चलती थी और शाम को हरिचर्चा और पुराणों की कथा चलती।

कभी भाव विकसित होता है कभी प्रेम विकसित होता है कभी तत्त्वज्ञान का प्रकाश होता है, क्योंकि मन का स्वभाव है। सदा एक जैसा होता है तो मन ऊबता है। इसीलिए भोजन में भी

कभी रोटी-सब्जी तो कभी चावल-दाल, कभी खीर-पूड़ी तो कभी फलाहार। आखिर पेट भरना, लेकिन वेराइटी मन का स्वभाव है। ऐसे ही जानन्ति मुनि अलग-अलग साधना प्रवृत्ति की वेराइटियाँ देकर अपने प्यारे शिष्यों की उन्नति कर रहे थे। ऐसे अनेकों की उन्नति में संलग्न जानन्ति मुनि के श्रीचरणों में पहुँचने का सौभाग्य वेदमालि ब्राह्मण को मिल गया।

वेदमालि कथा तो स्वयं भी करता था, वक्ता था, लोगों को सुनाता था लेकिन मुनीश्वर के चरणों में बैठने से जो शांति मिली, कथा का रहस्य खुलने लगा वह कुछ निराला था क्योंकि मुनि कथा को बेचते नहीं थे। मुनि तो हृदय में छुपे हुए पापों को बेच डालते थे, अहंकार को विसर्जित करते थे। वे धन कमाने के लिए कथा नहीं करते थे, यश पाने के लिए कथा नहीं करते थे, कथा के लिए ही कथा करते थे इसलिए उनकी कथा रसप्रद होती थी, भीतर का प्रकाश देने वाली होती थी।

वेदमालि ब्राह्मण ने संकल्प किया कि इन मुनीश्वर का शिष्य बन जाऊँ। मुनीश्वर ने कहाः "बैठो, रहो। शिष्य बनने की जल्दी नहीं, क्योंकि गुरू बनने का मुझे शौक नहीं है।"

गुरू बनने में भी बहुत कुछ देना पड़ता है। गुरू शिष्य को दीक्षा देते हैं। दीक्षा = दी = जो दिया जाता है। क्षा = जो पचाया जाता है। आध्यात्मिक शक्ति देने का जो सामर्थ्य रखे, हमारे हृदय में दिव्य शक्ति का संचार करने की शक्ति रखे उनको गुरू कहा जाता है। आध्यात्मिक शक्ति को पचाने की जिसमें योग्यता हो उसको शिष्य कहा जाता है।

किसान चार पैसे के दाने भी जमीन में तब फेंकता है जब ऊर्वर भूमि देखता है। सड़क पर तो नहीं फेंकेगा, क्योंकि जानता है कि वहाँ नहीं ऊगेंगे, व्यर्थ जाएँगे। ऐसे ही गुरू लोग भी शिष्यों की योग्यता, उनकी तत्परता, उनकी श्रद्धा, उनका समर्पण, उनकी सेवा और सहनशक्ति देखते हैं।

मुनीश्वर ने कहाः "हे ब्राह्मण देव ! तुम कुछ दिन रहो, क्योंकि तुमने कथाएँ की हैं। तुम बहुत चतुर हो। तुमको रंग लगने में देर लगेगी।"

जैसे, नेता को कथा का रंग लगना बड़ा कठिन है क्योंकि वह स्वयं भाषण करता है तो गुरू महाराज के सत्संग को भी भाषण गिन सकता है। इसलिए नेताओं को आध्यात्मिक रंग इतना जल्दी नहीं लग सकता जितना अन्य लोगों को लग सकता है। ऐसे ही कथाकार को इतना रंग नहीं लग सकता जितना आमजनता को लग सकता है।

कथाकार अगर सदगुरू के चरणों में जाकर कथा सुने, सत्संग सुने तो इतना जल्दी रंग नहीं लगेगा। वह तो सत्संग में से पोइन्ट नोट करेगा और दूसरे लोगों को कथा सुनाने की अपनी योग्यता बढ़ायेगा। शांति पाने की योग्यता तो शिष्य के अन्दर आती है। कथाकार के अन्दर तो कथा करने की योग्यता का विकास होता है।

हाँ, कोई कथाकार भी हो, भगवान का भक्त भी हो, सदगुरू का शिष्य भी हो उसको तो खूब-खूब धन्यवाद है।

वेदमालि ब्राह्मण कुछ दिन रहा। पूर्वकाल में किये हुए संध्या-वन्दन, जप-तप, पूजा-प्रार्थना, स्वाध्याय और वेदाध्ययन अन्तःकरण को निर्मल करने में सहयोगी बने। एक दिन गुरूदेव के चरण पकड़कर प्रार्थना करने लगा कि गुरूदेव मुझे कोई विशेष उपदेश दो।

जानन्ति मुनि इस ब्राह्मण पर प्रसन्न थे। इसका हृदय शुद्ध हुआ था इसलिए तत्त्वजिज्ञासा जागी थी।

मुनीश्वर ने अपने चित्त को क्षणभर में अपने चैतन्य स्वरूप परमात्मा में डुबा दिया। फिर ब्राह्मण पर आत्मिक प्यारभरी निगाहें डालते हुए मधुर वाणी से बोलेः

"हे वेदमालि ब्राह्मण ! तू अपने को ब्राह्मण मानता है लेकिन 'मैं ब्राह्मण हूँ' यह तेरे मन की मान्यता है। ब्राह्मण कुल में तेरे शरीर का जन्म हुआ है, तेरा जन्म नहीं हुआ है। हे वेदमालि ब्राह्मण ! तू अपने चित्त को सुबह-सुबह में उस चैतन्य परमात्मा के चिन्तन में लगाया कर। प्रभात का चिन्तन दिनभर की तेरी मनोदशाओं को उन्नत करेगा।

हे विप्र ! जानन्ति मुनि इस शरीर का नाम है। मैं तो वह हूँ जिसमें अनंत अनंत ऋषि-मुनि, देव-दानव, यक्ष-गन्धर्व-किन्नर और पाँचों भूत उत्पन्न हो-होकर लीन हो जाते हैं। वह मैं शुद्ध चैतन्य चिदाकाश परब्रह्म हूँ।

हे वेदमालि ब्राह्मण ! किसी की भी निन्दा न करना। किसी की उन्नति करने के लिए उसको टोक देना, पर हृदय में प्यार भरा हो, तो उसकी भी उन्नति और तुम्हारे अन्तःकरण की भी पवित्रता। अगर घृणाभाव से या निन्दाभाव से किसी को कुछ कहोगे तो उसकी उन्नति भी उतनी नहीं होगी और आपकी भी नहीं होगी।

जो दूसरों की निन्दा नहीं करता, दूसरों का धन नहीं हड़पता, दूसरों का दुःख दूर करने के लिए जो बोलता है उसकी वाणी तप बन जाती है। जो दूसरों को देखते समय दूसरे जिससे देखते हैं उस परमात्मा की याद कर लेता है उसका दूसरों के चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

हे वेदमालि ! प्रातःकाल में, ब्रह्ममुहूर्त में ब्रह्मचिन्तन करना चाहिए। अपने पुरूषार्थ के अनुकूल संकल्प और चिन्तन कर लेना चाहिए। किन कारणों से मेरा शरीर रोगी बनता है, किन कारणों से नीरोगी होता है इसका भी प्रातःकाल में थोड़ा सा अध्ययन कर लेना चाहिए। किन कारणों से चित्त में शांति आती है और किन कारणों से अशांति आती है, खिन्नता घेर लेती है उसका भी सुबह-सुबह कुछ अध्ययन स्वयं कर लेना चाहिए। चिन्तन करके शांत हो जाना चाहिए।

मध्याह्न के समय भी मध्याह्न संध्या कर लेनी चाहिए। दस मिनट की मध्याह्न संध्या पापों का नाश करने वाली है। तुम तो ब्राह्मण हो, जानते हो। संध्या में प्राणायाम किये जाते हैं और प्राणायाम से प्राणशक्ति सूक्ष्म होती है। प्राणशक्ति सूक्ष्म होने से मन पवित्र होता है, मन स्वस्थ और शांत होता है, बुद्धि का विकास होता है। फिर वही सूक्ष्म बुद्धि सूक्ष्मातिसूक्ष्म परब्रह्म परमात्म-तत्त्व का विचार करने में सफल होती है।"

जानन्ति मुनि आगे कहने लगेः

"हे वेदमालि ! 'दो पुत्र मेरे हैं, पत्नी मेरी है, यह घर मेरा है' - ऐसा करके अपने प्रेम को कुण्ठित कर दिया। इस कारण औरों का शोषण करके तुमने तप को, कथा को और उम्र को बेच दिया। लेकिन पहले किया हुआ वेदाध्ययन तुम्हारे हृदय में स्फुरित हो आया है। इसलिए तुम इस मोहमाया को जीतने के लिए सत्संगति में आ गये हो। अब यहाँ सत्संगति में भी अपनी साधना में अनुकूल चलने वाले साधकों का ही संग करना। जो मूर्ख हों, पामर हों, संसार की लोलुपता से जिनका चित्त आक्रांत हो ऐसे लोगों का संग नहीं करना, क्योंकि तुम्हारा जीवन अब थोड़ा ही है। उम्र बढ़ गई है। छप्पन वर्ष पूरे हो रहे हैं, सत्तावनवाँ वर्ष आ रहा है। कब साठ पूरे हो जाएँ और एकसठवें वर्ष में चल बसो या बासठवें वर्ष में चल बसो, कोई पता नहीं। सोमवार को जाओ या शुक्रवार को जाओ। सात दिनों में से एक दिन तो अवश्य जाओगे। इस शरीर की मृत्यु हो जाये उसके पहले शरीर के अभिमान को त्याग दे और शरीर की आसक्ति छोड़ दे कि मेरा क्या होगा।

हे द्विज ! जीव पैदा होता है उसके साथ ही उसका निश्चय हो जाता है कि कब इसको मरना है और किस घटना से मरना है। किस माता के उदर से इसको जन्म लेना है और किस कन्या से इसको फेरे फिरने हैं यह पहले से ही उसका निश्चित होता है। जीव नाहक के संकल्प-विकल्प करके अपना प्रारब्ध उलझा हुआ बना देता है। अगर जीव को पुरूषार्थ करना है तो परम पद को पाने का पुरूषार्थ करना चाहिए। दो रोटी के टुकड़ों के लिए अति पुरूषार्थ करने की आवश्यकता नहीं है। यथायोग्य पुरूषार्थ करके फिर बाकी के समय में वेदज्ञान के अमृत में गोता मारना चाहिए।

हे वेदमालि ब्राह्मण ! अब ध्यान करेगा तो घर याद आयगाष पत्नी याद आयगी, बेटे याद आयेंगे। बेटों को जो हिस्सा दिया है उसका सदुपयोग होता होगा कि नहीं होता होगा, ऐसा तेरे चित्त में आयगा। इसलिए हे विप्र ! तू विचार करना कि तू लाया था क्या ? पत्नी और पुत्र तेरे साथ नहीं आये थे। पत्नी भी तुझे यहाँ मिली, पुत्र भी तुझे यहाँ मिले और धन भी यहीं मिला। ये सब भी यहाँ बिछड़े। तेरे साथ तो तेरा पुण्य आया था, तेरे साथ भी तेरी समझ आयी थी, तेरे साथ तो तेरा परमात्मा था, वह वेदाध्ययन के समय भी था और अभी भी है। तू पत्नी के साथ था तब भी परमात्मा था लेकिन ढका हुआ था।

"अब तू मोह को ज्यों-ज्यों निवृत्त करता जायेगा, पर्दा ज्यों-ज्यों धुँधला होता जाएगा त्यों-त्यों आत्म-प्रकाश बढ़ता जाएगा।"

कथा कहती है कि नित्य इस प्रकार मुनीश्वर जानन्ति के अनुभवयुक्त वचन सुनते-सुनते वेदमालि ब्राह्मण का श्रवण के साथ मनन होता था, साथ ही साथ निदिध्यासन भी होता जाता था। कभी-कभी उसके शरीर में यकायक झटका सा आ जाता था, प्राणोत्थान होने लगता थाष कभी-कभी कीर्तन में, ध्यान में वह भावविभोर हो जाता था। अष्ट प्रकार के सात्त्विक भावों में से किसी न किसी भाव से उसका चित्त भर जाता था। अश्रुपात होना, रूदन होना, रोमांच होना,

हास्य होना, शरीर में कंपन होना, भावावेश होना इस प्रकार कभी किसी भाव में कभी किसी भाव में उसका चित्त रमण करता था।

मुनीश्वर की कथा सुनते-सुनते वेदमालि को बड़ा रस आता था। रस स्वरूप परमात्मा में गोता मारकर उसकी वृत्ति थोड़ी-थोड़ी व्यापक होती जाती थी। पहले तो दो बेटे और पत्नी की तरफ ही अपना जीवन केन्द्रित था। अब आश्रम के जो लोग थे उनके प्रति वृत्ति व्यापक हो गई कि ये सब हमारे ही हैं। फिर धीरे-धीरे गंगा किनारे यात्रा करने वालों में उसका अपनापन जुड़ा और ऐसा करते-करते उसका अपनत्व सारी सृष्टि में फैलने लगा। उसका देहाध्यास कम होने लगा, हृदय की ग्रन्थियाँ खुलने लगा।

अपने प्रेम को जितना-जितना विस्तृत करते हो उतना-उतना आप उन्नत होते जाते हो। जितना-जितना प्रेम को कुण्ठित करते हो, शरीर में आबद्ध करते हो उतना-उतना अपनी पाशवी योनियों के लिए तैयारी करते हो।

प्रेम को जितना-जितना **बहुजनहिताय.... बहुजनसुखाय** विकसित करते हो उतना-उतना आप परमात्म-स्वभाव को जगाते हो।

वेदमालि ब्राह्मण अपने परमात्मा-स्वभाव को जगाते-जगाते एक ऐसी ऊँचाई पर पहुँचा कि उसको वृक्षों में भी अपना चैतन्य वपु दिखाई देने लगा। पक्षियों की किलोल में भी अपना प्रियतम किलोल करता दिखाई देने लगा। पशुओं की हँभार में और गधे के रेंकने में भी चैतन्य की सत्ता की दीदार होने लगा। फूलों का खिलना, हवाओं का चलना आनन्ददायक लगता। उस चैतन्य के प्रसाद को वह अन्दर ले जाता और अपने आत्मरस से भरी हुई आँखों से अपने गुरूदेव को भावपूर्वक निहारता। वह अहोभाव से गुरूदेव को निहारता तो गुरूदेव कृपापूर्ण अन्तःकरण से शिष्य के तरफ निहारते।

इस प्रकार शिष्य के बन्धन धीरे-धीरे कटते गये। शिष्य शिष्य न बचा और गुरू गुरू न रहे। दो दीये जगमगाये। दोनों दीयों के जगमगाहट से कमरे में जो रोशनी होती है तो कौन-से दीये की कौन सी रोशनी है यह कहना मुश्किल है। ऐसे ही गुरू का आनन्द और शिष्य का आनन्द एक ब्रह्मानन्द में बदल गया। वेदमालि ब्राह्मण को आत्म-साक्षात्कार हो गया।

आप भी अपने प्रेम को प्रकटाते जाओ, अपने प्रियतम परमात्मा को स्नेह करते जाओ। जो पक्षियों में किलोल कर रहा है वह तुम्हारा ही राम है और जो पशुओं में चल फिर रहा है वह भी तुम्हारा चैतन्य है। जो फूलों में खिल रहा है, हवाओं में झूम रहा है वह भी तुम्हारा है और जो दिल की धड़कनें चला रहा है वह भी तुम्हारा है। गुरू बनकर उपदेश दे रहा है वह भी तुम्हारा प्रियतम परमात्मा है और साधक बनकर सुन रहा है वह भी तुम्हारा यार परमात्मा ही बैठा है। उस सर्वनियंता जगदीश्वर को हम प्यार करते हैं। उसी परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं जो प्राणीमात्र के हृदय का हृदयेश्वर है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अदभुत प्राणोपासना

श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण में श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं-

"जो अपने आत्मदेव में स्फुरण पैदा होता है वह क्षण मात्र में योजन पर्यंत जाता है। उस स्फुरण के आधार को जानकर हे राम जी ! तुम स्थिर हो जाओ।"

बहुत ऊँची बात है। हम यहाँ होते हैं और मीलों दूर हमारा मन जाता है। .....वापस आता है.... दूसरी जगह जाता है.... वापस आता है....तीसरी जगह जाता है। अभी मन में कुछ विचार चल रहे हैं, दस मिनट के बाद कौन-से विचार आयेंगे कोई पता नहीं। इस प्रकार असंख्य विचार मन से बहते रहते हैं... असंख्य। जैसे सरोवर या सागर के जल में तरंग उठते हैं वैसे ही हमारे शुद्ध आत्मदेव की सत्ता लेकर मन में असंख्य विचार तरंग उठते हैं जिसे मन का स्फुरण कहा जाता है। जहाँ से यह स्फुरण उठता है उस आत्मदेव को सिर्फ तीन मिनट के लिए भी अगर कोई जान लेता है तो वह धर्म के फल को प्राप्त कर लेता है। वह योगी हो तो उसका योग सिद्ध हो जाता है, तपस्वी हो तो उसका तप सफल हो जाता है, जपी हो तो उसका जपानुष्ठान सार्थक हो जाता है, वह त्यागी हो तो उसका त्याग पूर्णत्व को पा लेता है। ऐसा ऊँचा अनुभव होता है।

ऐसी बात पढ़ जाते हैं, सुन लेते हैं लेकिन सूक्ष्मता से यह बात अगर पकड़ में आ जाय तो निहाल हो जायें, बेड़ा पार हो जाय।

ऐसी बातें सूक्ष्मता से पकड़ नहीं पाते इसका क्या कारण है ? कारण यह है कि अपने चित्त में बिन जरूरी कचरा खूब भर लेते हैं। इसलिए सूक्ष्म सत्त्व, सूक्ष्म तत्त्व में हमारा चित्त प्रवेश नहीं कर पाता। वह सत्त्व उपासकों का ईश्वर होकर दिखता है, भक्तों का भगवान होकर दिखता है। शक्ति के उपासक उसको शक्ति मानते हैं, जगदम्बा के आराधक उसे माँ मानते हैं, गुरूभक्त उसे गुरू मानते हैं। है वही एक ही सत्त्व।

शुद्ध चैतन्य में से जो स्पन्दन पैदा होते हैं वे स्पन्दन बेमाप होते हैं। अगर चैतन्य की स्पन्दनरहित अवस्था में पहुँच जायें तो बेड़ा पार हो जाय। नहीं जा पाते, इसका कारण यह है कि उसके लिए तत्परता नहीं है। वहाँ ले जाने वाले महापुरूषों का समागम जल्दी से हो नहीं पाता। महापुरूष भी मिल गये और थोड़ी बहुत तत्परता भी है लेकिन चित्त में बिनजरूरी कचरा भरने की आदत पुरानी है।

आधुनिक युग के चाणक्य नीति वाले, मानो आधुनिक चाणक्य सरदार वल्लभाई पटेल किशोरावस्था में नड़ियाद की स्कूल में पढ़ते थे तब की घटना है। एक दिन स्कूल में मास्टर कुछ बोले जा रहे थे। वल्लभ को लगा कि सब व्यर्थ प्रलाप हो रहा है। वे सुना-अनसुना करके

मीठी नींद लेने लगे। मास्टर को लगा कि मैं छात्रों को पढ़ा रहा हूँ, बोले जा रहा हूँ और उद्दण्ड लड़का सो रहा है बेपरवाह होकर ? जगाकर धमकायाः

"ऐ लड़के ! क्या कर रहा है ? मैं इतना सिखा रहा हूँ और तू खर्राटे भर रहा है, बदतमीज !"

विवेकी और अपने मस्तिष्क में व्यर्थ बातें नहीं भरने वाले वल्लभ ने बढ़िया जवाब दियाः

"मास्टर जी ! बुरा न मानना। आप जो बोलते हैं वह सब अपने दिमाग में भरता रहूँ तो आप जो नहीं जानते हैं वह भरने के लिए जगह कहाँ से लाऊँ ? इसलिए जानबूझकर दिमाग को विश्रांति दे रहा हूँ।"

ऐसे लोगों में आत्मविश्वास होता है। व्यर्थ बातें अपनी खोपड़ी में नहीं भरो। सामने वाला जो जानता है वह सब अपनी खोपड़ी में भरना है ? हलवाई की दुकान पर जाकर सब मिठाई लेने की है ? किराने की दुकान पर जाओ तो सारी चीजें ले लोगे ?

तुम कहीं भी जाते हो, वहाँ जो कुछ मिलता है, अपने चित्त में भरते रहते हो। बस में बैठे तो सब विज्ञापन के चित्रों को देखने लग गये। इधर यह देखा, उधर वह देखा, यह सुना, वह सुना। सब दिमाग में भरते गये। बाहर निकालकर खाली हो जाने की तो बात ही नहीं।

....तो फिर जगत के लोग जो ज्ञान नहीं जानते उसको तो अपने चित्त में प्रवेश ही नहीं मिलेगा No Entry तत्त्वज्ञा की बात के लिए अपने दिमाग में No Entry है। दिमाग पूरा भरा हुआ है संसार के कचरे से। इसीलिए तत्त्वज्ञान की सूक्ष्म बातें ग्रहण नहीं कर पाते। चित्त शांत स्थिर नहीं हो पाता।

भगवान बुद्ध के पास कोई सेठ गया। कहने लगाः

"भन्ते ! अब मुझे पचास वर्ष पूरे हुए हैं। अब वन में जाने का प्रारम्भ हुआ है, एकावन.... बावन.... आदि। कृपा करके आप मुझे अपने जीवन का अनुभव बताएँ। दो वचन सुनाएँ जिससे मेरा उद्धार हो।" तब तक सेठ ने इधर नजर घुमाई, उधर दृष्टि की। अपनी अँगूठी की ओर देखा। कुछ की कुछ प्रवृत्तियाँ कर डाली।

बुद्ध समझ गये कि चित्त में बहुत कचरा उभरा हुआ है। अभी सिर्फ दवाई देने से रोग मिटेगा नहीं, ऑपरेशन करना पड़ेगा। वे बोलेः

"भाई ! हमने इतनी सारी मेहनत की, वर्षों तक भूख, प्यास और कष्ट सहे और जो अनुभव पाया वह यों ही मुफ्त में तुम्हें दे दें ? बिना सेवा के ज्ञान पचेगा कैसे ? सेवा करो सेवा।"

"भन्ते ! आज्ञा कीजिए।"

"आज्ञा क्या करें ? साधू-संतों को भोजन कराओ।"

"आप हमारे घर भोजन लेंगे ?"

"क्यों नहीं ? तुमने निमंत्रण तो दिया नहीं। सेवा तो किया नहीं, केवल लूटने को आये हो। हम ऐसे पागल थोड़े ही हैं कि लूटे जाएँ ?"

बुद्ध यह सब उस व्यक्ति को देखकर कहते हैं। स्वयं को खाने की कोई इच्छा नहीं, कुछ लेने की इच्छा नहीं। लेकिन उसको कुछ अनुभव कराना है।

"आप मेरे घर भिक्षा ग्रहण करने आयेंगे ! बड़ी खुशी की बात है।" सेठ खुश हो गये। सारा इन्तजाम करने लगे। रसोइयों को बुलाया, मित्रों से बात की। 'भगवान बुद्ध भिक्षा ग्रहण करने आने वाले हैं ! राजकुमार में से साधू बने थे, कोई साधारण साधू तो थे नहीं। खूब तैयारियाँ की, खीर बनायी, पूड़ी बनायी, मालपूआ बनायाष, क्या-क्या पकवान बनाये, व्यंजन बनाये। 'हमारे द्वार पर संत आने वाले हैं.....!'

भिक्षा का समय हुआ और बुद्ध भिक्षापात्र उठाकर चल दिये। रास्ते में कुछ सामान ढूँढते चले। उनकी नजर में पड़ गया किसी गाय का गोबर। उठाकर अपना भिक्षापात्र भर लिया। सेठ के द्वार पर पहुँचे तो सेठ ले आया सब भोजन सामग्री।

"महाराज ! लो।"

गोबर से भरा हुआ भिक्षापात्र आगे बढ़ाते हुए बुद्ध बोलेः

"डाल दो इसमें।"

"भन्ते ! यह तो गोबर से भरा है।"

"भरा है तो भरा है, तुम अपनी खीर उसमें डाल दो।"

"स्वामी ! खीर आपको काम नहीं लगेगी और मेरी खीर खराब होगी।"

"भिक्षा लेने बुलाया है तो भिक्षा दो न !"

"दूँ तो सही लेकिन अपना भिक्षापात्र मुझे दो। गोबर निकाल कर फिर ठीक से धो लूँ, बाद में भिक्षा दूँ।"

"तुम चार पैसे की खीर डालने से पहले बर्तन साफ करते हो तो मैं अपना ब्रह्मरस तुम्हारे अन्तःकरण में भरने से पहले तुम्हारा अन्तःकरण साफ करूँ कि नहीं ?"

प्रारम्भ में जो योगवाशिष्ठ की बात आयी थी वह बहुत सूक्ष्म थी लेकिन अपने कानों से टकराकर चली गई, अपनी नहीं रही। क्यों ? क्योंकि जगत का गोबर अपने अन्तःकरण में भरा हुआ है न !

सूक्ष्म बुद्धि के आदमी को इशारे से कह दो, वह काम बढ़िया कर देता है लेकिन मोटी बुद्धि के आदमी को बार-बार कहो तो भी समझ में नहीं आता।

कबीरजी की पत्नी बड़ी सूक्ष्म बुद्धि की थी। कबीर जी ने कहाः

"लोई ! एक बात सुन। मैं एक प्रज्ञाचक्षु (अंध) व्यक्ति को भोजन का निमंत्रण दे आया हूँ। अपना भोजन बने, साथ-साथ उस व्यक्ति का भोजन भी बना देना।"

लोई ने भोजन बनाया। प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति आये उसके पहले दो थालियाँ भोजन परोसकर तैयार कर दिया। पहले अतिथि भोजन कर लें बाद में घरवाले सब। कबीरजी ने दो थालियाँ देखकर पूछाः

"दो थालियाँ क्यों ? एक ही व्यक्ति आने वाला है तो अधिक भोजन क्यों बनाया ?"

"एक ही व्यक्ति आने वाले थे और आपने कहा कि प्रज्ञाचक्षु (अंध) हैं तो अकेले तो आयेंगे नहीं, किसी को साथ में लेकर आयेंगे इसलिए दो थालियाँ परोसी हैं।"

कबीरजी बड़े प्रसन्न हुए की आखिर तो लोई कबीर की पत्नी है।

व्यवहार में आदमी अनुमान लगाकर किसी विषय में पूर्व तैयारी कर लेता है ऐसे ही आयुष्य पूरा होगा तो तन और मन कहीं चले जायें उसकी अपेक्षा पहले से ही तैयारी रखें।

फुरने जहाँ से उत्पन्न होते हैं, संकल्प और विकल्प जहाँ से उठते हैं और योजनों तक चले जाते हैं, वापस आते है, बार-बार आते जाते हैं, उसको जो देखता है उस अधिष्ठान को जानने के लिए जो यत्न करता है...... अहाहा....! उसकी सारी पूजाएँ सफल हो गईं। उसको फिर आकाश से भगवान को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मरकर भगवान के पास जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह स्वयं भगवन्मय हो जायगा, साक्षात् नारायण का स्वरूप हो जायगा।

जहाँ से फुरना उठता है और मीलों तक चला जाता है उसमें थोड़ी विश्रांति मिल जाय। इस विश्रांति में आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं, मनोराज्य नहीं, निद्रा नहीं। इसमें थोड़ी सूक्ष्मता, तत्परता और गुरूकृपा। यह मौका अगर मिल जाय तो घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। अन्यथा, वर्षों तक करता रहे फिर भी पूर्ण नहीं होता। वर्षों तक करके भी बुद्धि सूक्ष्म बनाकर फिर यहीं आना है। संसार के सब व्यवहार करके भी इसी जन्म में या हजारों जन्म के बाद भी यहाँ तो आना ही पड़ेगा।

आपका संकल्प, फुरना उठकर चलता है, क्षणभर में मीलों तक जाता है, फिर दूसरा उठता है... तीसरा उठता है....। तो फुरना या सकल्प जहाँ से उठता है उसमें जरा टिक जायें, बस। एक विचार उठा.... दूसरा अभी उठने को है, दोनों के मध्य में रूक जायें, बेड़ा पार हो जाय। यह रूकना इतना जरूरी है जितना नवजात शिशु को माँ का दूध जरूरी है या हमारे शरीर को प्राण जरूरी है। मुक्ति के लिए फुरनों के अधिष्ठान में रूकना, वहाँ विश्रांति पाना अनिवार्य है। बिना प्राण का शरीर व्यर्थ है ऐसे ही बिना विश्रांति के, बाकी की सारी उपलब्धियाँ व्यर्थ हैं। इसीलिए नरसिंह मेहता ने ठीक कहाः

ज्यों लगी आत्मातत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।

अर्थात् तब तक किसी साधन में रूक न जाएँ, चलते ही जाएँ, ऊपर उठते ही जाएँ, आगे बढ़ते ही जाएँ। अगर इस साधन में गति हो गई तो दूसरे सब साधन हो गये सफल।

मन को, बुद्धि को भागने की, दौड़ने की आदत पुरानी है और आप उनसे जुड़ जाते हो यही भी आदत पुरानी है। इसीलिए बहुत कठिन भी लगता है।

अगर डटकर बैठ जायें और यही करें तो उत्तम जिज्ञासु को ज्यादा समय नहीं लगता। सत्पात्र हो, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हो, सदाचारी हो, गुरूआज्ञा शिरोधार्य करता हो, संसार की लोलुपता न हो साधक के लिए ईश्वर तो अपने घर की चीज है।

दिले तस्वीर है यार।
जबकि गरदन झुका ली, मुलाकात कर ली।।

उसके लिए यह चीज है। जैसे सुन्दरी को अपना मुख देखने में कितनी देर ? अरे, झट पर्स से आयना निकला, मुख देख लिया।

जैसे व्यक्ति आयने में अपना मुख देखने में देर नहीं करता ऐसे ही जिसके पास दिल का आयना है वह दिलबर को जब चाहे, जितनी बार चाहे, देख सकता है। किसी वेदान्तिक संत ने ठीक ही कहा हैः

ऐ तालिबे मंजिल तू मंजिल किधर देखता है।
दिल ही तेरी मंजिल है तू अपने दिल की ओर देख।।

एक विचार उठा.... दूसरा उठने को है..... उसके बीच की अवस्था को देख। अपने भीतर उठते हुए संकल्पों को सूक्ष्मता से देख।

कई लोगों ने तप किया, जप किया, कई घर छोड़कर हिमालय गये, कोई नहीं गया कोई नहीं गया, इस देव को रिझाया, उस देव को रिझाया। अंत में जिस किसी को भी ईश्वर-प्राप्ति हुई तो अपने हृदय में ही हुई। चाहे राम जी के उपासक हो चाहें कृष्णजी के हों चाहे शिवजी के हों चाहे कालीजी के हों चाहे गुरूजी के हों अथवा और किसी के हों लेकिन ईश्वर जब मिला है तब दिल में ही मिला है।

अंतर्यामी देव को छोड़कर जो बाहर के देव को पूजता फिरता है वह तो कर्मलेढ़ी कहा जाता है। जैसे, हाथ में मक्खन का पिण्ड आये उसको गिराकर छाछ चाटने लग जाय, ऐसे ही अंतरतम चैतन्य आत्मदेव का रस, सुख और आनन्द छोड़कर बाहर किसी वस्तु या व्यक्ति को रिझाने में लग जाय उसको क्या कहेंगे ? 'यह मिले तो सुखी हो जाऊँ, वह मिले तो सुखी हो जाऊँ, यह देव आवे तो वरदान दे, वह देव आवे तो सहाय करे....' वह देव भी इस आत्मदेव में मन लगेगा तब खिंचकर आयेगा, नहीं तो सबके पास क्यों नहीं जाता ? बुलाते तो कई हैं ! काली आ जाय, श्रीकृष्ण आ जायें, शिवजी आ जायें, राम जी आ जायें, रहेमान आ जाय.... लेकिन जितन तुम भीतर के देव से वफादार होगे उतने ही बाहर के देव सहज में प्रकट होंगे।

अहमद शाह नाम का सूफी फकीर हो गया। वह कृष्णभक्ति में बड़ा मस्त रहता था। श्रीकृष्ण से बड़ा प्यार था उसको। कोई पुजारी की तरह वह प्यार नहीं करता था। उसके पास कोई आरती नहीं थी, टकोरी नहीं थी, श्रीकृष्ण की प्रतिमा भी नहीं थी। **कर्षति आकर्षति इति कृष्णः।** जो आकर्षित कर ले, आनंदित कर दे वह कृष्ण। वह अहमद शाह ऐसे श्रीकृष्ण को खूब स्नेह करता था। सदा उसके ध्यान में तल्लीन रहता था।

अहमद शाह श्रीकृष्ण का ऐसा बढ़िया भक्त था कि श्रीकृष्ण भी उससे दिल्लगी करने प्रकट हो जाते। जैसे नामदेव के आगे भगवान बावन बार प्रकट हुए ऐसे ही अहमद शाह के आगे श्रीकृष्ण कई बार प्रकट हुए।

सर्दियों के दिन थे। अहमद शाह तापणा ताप रहा था। श्रीकृष्ण की इच्छा विनोद करने की हुई। वे युवक ब्राह्मण का रूप लेकर आये। उस वक्त अहमद शाह ने सिर पर तीलियों का टोपा पहना हुआ था। श्रीकृष्ण आकर बोलेः

"अहमद !"

अहमद शाह ने सोचा कि यह ब्राह्मण का बच्चा मेरा नाम ऐसे ही लेता है मानो कोई पुराना पहचान वाला है ! बोलाः

"क्या है ?"

"इतना लम्बा-चौड़ा टोपा पहना है। बोलो, टोपा बेचोगे ?"

अहमद पहचान गया कि श्रीकृष्ण के सिवा दूसरे की हिम्मत नहीं है। उसने कह दियाः

"अहमद का टोपा खरीदने वाला कोई पैदा ही नहीं हुआ।"

"मैं खरीदता हूँ अहमद !"

"तुम क्या खरीदोगे ? तुम्हारे पास है क्या ?"

तब ब्राह्मण वेशधारी नटखट नागर ने कहाः "मेरे पास क्या नहीं है ? जो मूल्य माँगो, मैं चुका सकता हूँ।"

"तुम्हारे पास है क्या, मैं जानता हूँ। बहुत-बहुत तो यह लोक और परलोक। इन दो लोकों में अहमद का टोपा नहीं बिकता है। और कोई मिल्कियत हो तो बात करो।"

प्रेम में नेम (नियम) नहीं होता। अहमद का शुद्ध प्रेम था।

श्रीकृष्ण बोलेः "अहमद ! तुम तो अपने को इतना बड़ा मानते हो ? बड़े अभिमानी हो गये हो ?"

"बड़े अभिमानी हो गये, छोटे अभिमानी हो गये, कुछ भी हो लेकिन अहमद का टोपा खरीदना कोई बच्चों का खेल है ?"

"अहमद ! मैं लोगों को कह दूँगा कि अहमद पक्के फकीर नहीं हैं, बड़े अभिमानी हैं। ये पक्के संत नहीं हैं। यह जानकर लोग तुम्हारे को पूछेंगे भी नहीं।"

"जाओ जी जाओ, किसको दम भरते हो, किसको डांटी देते हो ? तुम्हारी दमदाटी में हम आने वाले नहीं हैं। किसको भय दिखाते हो ? जाओ जाओ सब लोगों को कह दो। लेकिन आप भी सावधान रहना। आपके बारे में मेरे पास भी कुछ कहने को है। मैं भी लोगों को कह दूँगा कि, 'कन्हैया सिर्फ मठ-मंदिरों में ही नहीं है. उसके लिये घंटियाँ बजा-बजाकर, आरतियाँ उतार-उतारकर मक्खन हाथ में धरके चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। भीतर गोता मारो। भीतर एक वृत्ति उठे, दूसरी अभी उठने को है उसके बीच जो उनका अधिष्ठान है, जो सबको आकर्षित करता

है वह कृष्ण है। उसकी उपासना करो।' फिर आपके पूजा-उत्सवों का सब झमेला ठण्डा हो जायेगा।"

श्रीकृष्ण कहते हैं- "सबकी गति वहाँ नहीं हो पायगी। अहमद ! ऐसा मत करना।"

"ऐसा मत करना... तो आप भी ऐसा मत करना।"

"अच्छा, मिलाओ हाथ।"

दोनों ने हाथ मिलाया, आलिंगन किया। समझौता हो गया।

आपको श्रीकृष्ण से मिलना है तब भी यह योगयुक्ति बहुत बढ़िया है, शिवजी से मिलना है तभी, विष्णुजी से मिलना है तभी, जगदम्बा से मिलना है तभी, ब्रह्मवेत्ता सदगुरू से मिलना है तभी और किसी मित्र से मिलना है तभी यह योगकला काम में आ सकती है। अंतर्यामी चैतन्य विश्वव्यापक है। अरे, विश्व तो इसके एक कोने में है। ब्रह्मचैतन्य के एक कोने में माया है और माया के एक कोने में जगत है।

इतना विश्वंभर तत्त्व तुम्हारा चैतन्य चिदाकाश है। उससे एक स्पन्दन उठता है। जैसे आपका श्वास अन्दर जाता है, उच्छवास बाहर आता है। अन्दर श्वास जाता है वह ठण्डा होता है जो बाहर आता है वह गर्म होता है। यह तुम्हारा अनुभव होगा।

तुम जानते हो कि स्टोव, पेट्रोमेक्स या सायकल, स्कूटर आदि के टायर में एकाध पंक्चर हो जाय, छोटा सा सुराख हो जाय तो कंपनी का मालिक आकर हाथ जोड़े, फिर भी स्टोव नहीं जलेगा, सायकल-स्कूटर नहीं चलेंगे।

हमारे शरीर में कितने-कितने छेद हैं ? श्वास आता है, जाता है, श्वास का तो पसारा है। देहरूपी पुतली चल रही है श्वास पर। इस श्वास को खींचने की और छोड़ने की जहाँ से प्रक्रिया होती है उस प्रक्रिया के मूल में काम चैतन्य का होता है। इससे फेफड़े स्पन्दित होते है। ऐसा नहीं कि तुम्हारी रोटियाँ से वे स्पन्दित होते हों। नहीं, वह चिदाकाश चैतन्य है।

शांति से बैठ जाओ। आप देखो कि श्वास चल रहा है। कुछ दिन श्वास को देखते जाओ। अथवा गिनते जाओ, अथवा अजपा गायत्री करते जाओ। आपको धीरे-धीरे श्वास की गतिविधि का पता चलेगा। जिसके हाथ में श्वास की गति की युक्ति आ गई उसको समर्थ होने में देर नहीं लगेगी। उसको निर्विकार होने में तकलीफ नहीं पड़ेगी।

कुछ न करो केवल श्वास को देखते रहो। इसको श्वास की माला बोलते हैं लेकिन आलस्य नहीं होना चाहिए। दिमाग में कचरा भरने की आदत मिटाते रहना चाहिए। इस साधना में केवल तत्पर होने की कोशिश करे तभी भी आदमी सफल हो सकता है।

अपनी-अपनी जगह पर सब साधनाएँ ठीक हैं लेकिन यह आत्म-विचार का मार्ग तो अनूठा ही है। जिनका प्राणोत्थान होता है, क्रियाएँ होती हैं उनको तो ठीक है, नाड़ीशुद्धी होती है, आगे बढ़ते हैं। लेकिन कभी-कभी मौका मिले तो श्वास को देखो।

सारे जगत का आधार है प्राणशक्ति। पक्षियों की किलोल प्राणशक्ति पर आधारित, मनुष्य का चलना-फिरना भी प्राणशक्ति पर आधारित, वृक्षों का बढ़ना, फूलों का खिलना और फलों का बनना, इसमें भी प्राणशक्ति काम करती है।

अमावस्या और पूर्णिमा के दिन सागर में ज्वार आती है। एकम से लेकर क्रमशः हररोज पौना घण्टा ज्वार लेट होती चली जाती है। जो लोग सागरतट पर रहते हैं उनको पता होगा।

जिस समय समुद्र में ज्वार आती है उस समय काटे गये वृक्षों के अंगरस में जलतत्त्व अधिक जाने से उस लकड़ी में कीड़े जल्दी लगने की सम्भावना होती है। वृक्ष की डाली काटो तो डाली रूग्ण हो जाती है। भाटा के समय काटो तो रुग्ण नहीं होती।

चाँद आकाश में है और उसका प्रभाव समुद्र पर पड़ता है। पूर्णिमा और अमावस्या का प्रभाव समुद्र पर पड़ता है। सातम्, आठम, दूज या एकादशी का प्रभाव समुद्र पर पड़ता है। यह प्रभाव जैसे समुद्र पर पड़ता है वैसे हवाओं पर भी प्रभाव पड़ता है और वनस्पति पर भी पड़ता है। वृक्षों पर प्रभाव पड़ता है तो मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।

दयालु ऋषियों ने खूब सूक्ष्म अध्ययन किया है। इसीलिए उन्होंने खोजा कि एकादशी का व्रत रखना चाहिए, पूनम का व्रत रखना चाहिए क्योंकि उन दिनों में चन्द्रमा विकसित होता है। सूर्य की किरणें सीधी चन्द्रमा पर पड़ती है इसलिए प्राणशक्ति कुछ कमजोर होती है। उन दिनों में व्यक्ति की जठराग्नि थोड़ी सी मंद रहती है। अष्टमी के बाद चाँद बढ़ता जाता है तो जठराग्नि मन्द होती चली जाती है। इसीलिए एकादशी से लेकर अमावस्या या पूनम तक व्रत करने से अजीर्ण की तकलीफ होगी तो ठीक हो जायगी। आप व्रत रखेंगे तो जठराग्नि तेज रहेगी, आपकी तंदुरूस्ती की रक्षा होगी। इसमें फिर भगवद् भाव और जागरण से आपके मन और प्राण ऊपर को उठेंगे, शायद आपकी आध्यात्मिक उन्नति सफल भी हो जाये, बाकी अन्य दिनों से ज्यादा होती है।

लोक-व्यवहार में आपने देखा होगा कि बूढ़ा आदमी अगर बीमार पड़ गया, उसकी स्थिति चिन्ताजनक है तो पुराने लोग कहेंगे कि आज कौन सी तिथि है ? तेरश है। अगर पूनम गुजार दे तो काका बच जायगा। अमावस्या गुजार दे तो बच जायगा।

प्रायः तुम देखोगे तो जिनकी जीवन-शक्ति क्षीण हो गई है, जो बूढ़े हो गये हैं वे इन दिनों में रवाना होते हैं।

दूसरी बातः एकादशी से पूनम तक के दिनों में तुम कोई दवाई चालू करो तो इतना प्रभाव जल्दी नहीं होता लेकिन तीज से लेकर अष्टमी, नवमी तक के दिनों में दवाई चालू करो तो दवाई का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

जो ज्यादा बीमार पड़ते है वे निरीक्षण करें तो पता चल सकता है कि प्रायः एकादशी से अमावस्या, पूनम, एकम, दूज के दिनों में ही ज्यादा दुर्बलता महसूस करते हैं। बाद में प्राणशक्ति बढ़ती है। प्रायः ऐसा होता है। कोई लोग अपवाद भी हो सकते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि आपके शरीर के संचालन की डोरी प्राणशक्ति के हाथ में है। प्राणशक्ति का सीधा सम्बन्ध उस चिदघन चैतन्य से है।

संसार का सार शरीर है। शरीर का सार इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों का सार मन है। मन का सार प्राण है। प्राण निकल गये तो मन कहाँ रहेगा ? प्राण निकल गये तो आँख होते हुए भी कुछ काम की नहीं। शरीर होते हुए भी किसी काम का नहीं।

आप जो श्वास लेते हैं वह प्राण नहीं है। वह तो बहुत स्थूल है। यह तो हवा ले रहे है। श्वासोच्छवास से जीवन जीने की शक्ति पाते हैं।

अगर आपकी श्वास-क्रिया में तालबद्धता हो जाय, तो आप जब चाहें, विकारों को बुला सकते हैं, जब चाहें, विकारों को भगा सकते हैं। चाहें तब मन को शांत कर सकते हैं, चाहें तब व्यवहार में लगा सकते हैं। आपके सामने प्रकृति रहस्य खोलने लग जायेगी, योग की कुंजियाँ हाथ लग जायेगी।

इसी कारण से योगी अपने भक्तों की रक्षा कर लेते हैं, दूर-दूर स्थानों में स्थित भक्तों को सहाय पहुँचा सकते हैं।

कोई पुरूष किसी का रोग दूर कर सकता है या चमत्कार करता है तो इसके पीछे भी प्राणशक्ति काम करती है। सामने कोई व्यक्ति आया, उसमें आदर भाव जगा, योगी ने उसके साथ बातचीत करते हुए अपनी प्राणशक्ति की किरण उसमें फेंकी और उसकी सुषुप्त प्राणशक्ति जगी, रोग प्रतिकारण शक्ति बढ़ी, कुछ दवा से कुछ दुआ से काम हो गया।

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, प्रसिद्ध या छुपे हुए, जगत में जो उन्नत पुरूष हैं उनके प्राण सूक्ष्म हैं इसलिए उन्नत हैं। फिर चाहे वे किसी भी धर्म के हों, किसी भी मजहब के हों, किसी भी सम्प्रदाय के हों। वे इस रहस्य को जानते हों या नहीं जानते हों, अनजाने में ही उनके प्राण सूक्ष्म हुए तभी वे उन्नत पुरूष माने गये।

जिनके प्राण सूक्ष्म हैं उनकी वाणी हजारों लोगों को प्रभावित करने में सफल हो जाती है फिर चाहे नेता के मंच से बोलते हैं चाहे धर्म के मंच से बोलते हैं। व्यक्ति में जितनी सच्चाई होती है उतने प्राण रिधम से चलते हैं। बेईमान आदमी की धड़कनें बढ़ जाती हैं। आप झूठ बोलते हैं तो आपके प्राण का ताल टूट जाता है। आप सत्य पर होते हैं तो प्राण का ताल बराबर जोर करता है, आप विजेता हो जाते हैं। आप चाहे मान लें कि अम्बाजी ने कहा, फलाना देव ने प्रेरणा की, लेकिन वास्तव में इसके मूल में योग विज्ञान के रहस्य छुपे हुए हैं।

प्राणोपासना बड़ी रहस्यमय उपासना है।

मनुष्य अगर भगवान को भजना चाहे तो वह उत्तम मनुष्य के रूप में ही भगवान की कल्पना कर सकता है। अगर कोई भैंसा भगवान को भजना चाहे तो अपने से कोई मोटे-ताजे भैंसे के रूप में ही भगवान की कल्पना कर सकता है। आप जिस देह में रहते हैं उसके अनुरूप ही आप भगवान को भज सकते हैं या देख सकते हैं। अगर दूसरा देखेंगे, सोचेंगे तो आपकी कोरी

कल्पना ही होगी। बड़े-बड़े भाषण करने वाले जो बोल देते हैं कि, 'भगवान निर्गुण है, भगवान निराकार है, भगवान ऐसा है, भगवान वैसा है.....' उनके पास सूचनाओं के सिवाय, माथापच्ची के सिवाय और कुछ नहीं। जब-जब जिनको-जिनको भगवान मिला है उनको मनुष्यरूपी भगवान के द्वारा ही मिला है। भगवान ने कहा कि, 'आचार्य मैं हूँ।' भगवान जब भी प्रकट हुए तब मनुष्य के तन में ही प्रकट हुए। मनुष्य भगवान ने ही दूसरों को भगवान के दीदार करवाये हैं। फिर चाहे जगदगुरू शंकराचार्य का रूप लेकर भगवान प्रकट हुए चाहे वल्लभाचार्य का चाहे रमण महर्षि का चाहे श्रीकृष्ण का चाहे और कोई अवतार।

जिन पुरूषों में भगवत्तत्त्व ज्यों का त्यों प्रकाशित हुआ है उन जीवित पुरूषों में जो लोग श्रद्धा-भक्ति रखते हैं वे लोग बहुत तेजी से आगे बढ़ते हैं। जिनका भगवान कुछ और कल्पा हुआ है, किसी देश में, किसी मंदिर में, किसी मस्जिद में, किसी और जगह पर उनकी अपेक्षा वे लोग ज्यादा फायदे में हैं जिनको किसी जीवित ब्रह्मवेत्ता महापुरूष का सान्निध्य मिल गया।

गोरखनाथ किसी जगह पर गये तो वहाँ लोग किसी देवी-देवता को मना रहे थे, नारियल फोड़ रहे थे। गोरखनाथ हँसे।

एक भूला दूजा भूला भूला सब संसार।
वण भूल्या इक गोरखा जिसको गुरू का आधार।।

अखा भगत ने कहाः

सजीवाए निर्जिवाने घड्यो पछी कहे मने कंई दे।
अखो तमने इ पूछे के तमारी एक फूटी के बे?

सजीव मनुष्य निर्जीव मूर्ति को बनाता है, फिर उसे भगवान की जगह पर बैठाता है, प्राणप्रतिष्ठा करता है, पूजता है। फिर अपने बनाये हुए उस भगवान से ही माँगता है। अखाजी ऐसे मनुष्य की बेवकूफी देखकर कहते है कि अरे मानव ! तेरी दोनों आँखें फूट गई हैं क्या ? अर्थात् तू ज्ञानरूपी दृष्टि से क्यों वंचित हो गया है ?

जब भी तुम मूर्ति के आगे प्रार्थना करते हो तब जाने-अनजाने में तुम्हारे प्राण की रिधम तालबद्ध होती है, तुम्हारे संकल्प-विकल्प की भीड़ कम होती है तब तुम्हारे इष्ट को, गुरू को तुम्हारी प्रार्थना पहुँचती है। फिर कभी उनका संकल्प, कभी तुम्हारी तीव्र प्रार्थना प्रकृति में व्यवस्था कर देती है।

श्वास के द्वारा आप जो प्राण लेते हैं वे समष्टि से जुड़े हुए हैं।

दिल्ली में आकाशवाणी केन्द्र में या दूरदर्शन केन्द्र में जो कुछ 'ब्रोडकास्ट' होता है वह यहाँ बैठे सुन लेते हैं, देख लेते हैं। यह सन्देश यंत्रों के द्वारा भेजा जाता है पकड़ा जाता है। यंत्र से भी मन का संकल्प अत्यंत तेजी से चलता है। अमेरिका जाने के लिए अत्यंत गतिवाले विमान में बैठो चाहे रोकेट में ही बैठ जाओ फिर भी कुछ घण्टे लग ही जाएँगे लेकिन मन से जाओ तो कितनी देर लगेगी ? सोचा कि बस, पहुँच गये। इसी संकल्प की गति से 'टेलिपैथी' का

कार्य किया जाता है। इसी के जरिये दूर-दूर के स्थान में स्थित भक्त को या मित्र को सहयोग दिया जा सकता है, अगर प्राण पर नियंत्रण कर लिया है तो।

स्वर्ग के पितरों को तृप्त करना है तब भी तुम्हारी प्राणशक्ति काम करती है और यहाँ के मित्रों को तृप्त करता है तब भी तुम्हारी प्राणशक्ति काम करती है। अपने आपको तृप्त करना है तब भी प्राणशक्ति काम करती है।

यही कारण है कि जिनकी प्राणशक्ति उन्नत है वे पुरूष मुर्दे को जिन्दा कर सकते हैं और जिन्दों को आज्ञा में चला सकते हैं। ऐसे जीवित महापुरूष कण्ठी देने वाले गुरूओं से बहुत-बहुत उन्नत हैं। जो धर्म का रास्ता दिखाते हैं, नीति-नियम बताते हैं वे गुरू धन्यवाद के पात्र हैं लेकिन वे महापुरूष पूजनीय हैं जो अपने संकल्प मात्र से दूसरों के हृदय में प्राण संचारित कर दें, दूसरों के मन के भाव को बदलकर ईश्वर में लगा दें। जो संकल्प मात्र से, दृष्टि मात्र से असाधु को साधु बना दें, दुराचारी को सदाचारी बना दें, अभक्त को भक्त बना दें वे तो साक्षात् ईश्वर-स्वरूप हैं, ईश्वर ही हैं। प्राण का संचालक तत्त्व ईश्वर है और ईश्वर में जो टिके हैं वे ईश्वररूप हो गये हैं।

ऐसे जो नरभगवान हैं उनके संपर्क में आने वाला साधक जल्दी नारायणमय हो सकता है। वशिष्ठ जी महाराज नर भगवान हैं इसीलिए नरलीला करते हुए रामजी भी उनके चरणों में आ बैठे। श्रीकृष्ण 70 से 83 साल की उम्र तक एकान्तवास में अज्ञातवास में रहे। घोर आंगिरस ऋषि के पास उपनिषदों का अध्ययन किया था। तत्त्वज्ञान में परिनिष्ठित हुए। वही उपनिषद का ज्ञान महाभारत के युद्ध में अर्जुन को दिया। श्रीकृष्ण के पास प्राणशक्ति थी। सुदर्शन चक्र था। संकल्प सामर्थ्य से अदभुत कार्य कर लिया करते थे।

अभी भी तुम्हारे हवाई जहाज आदि जो चलते हैं उसमें क्या है ? वायु ही तो उसमें काम करता है, और क्या काम करता है ?

बच्चे को माँ कहने लगीः "देख बेटा ! मैं पड़ोस में जा रही हूँ। यह दीया जल रहा है। हवा आ रही है। कुछ भी करके दीये को बुझने नहीं देना।"

बच्चे ने देखा कि हवा आ रही है, अब क्या करूँ ? उसने छोटे-से दीये के ऊपर काँच की बरणी ढँक दी। दीया तूफान से तो बचा लेकिन ताजी हवा नहीं मिली तो बुझने से नहीं बचा। ऑक्सीजन नहीं मिला तो दीया बुझ गया।

प्राणशक्ति दीपक का भी आधार है, अग्नि का भी आधार है, पुष्पों और पत्तों का भी आधार है, वृक्षों और जड़ों का भी आधार है, पक्षियों का भी आधार है और पशुओं का भी आधार है, ग्रह और नक्षत्रों का भी आधार है। मेघ की वृष्टि का भी आधार वही प्राणशक्ति है।

जिसने अपने नजदीक के प्राण पर नियंत्रण पा लिया वह समष्टि के प्राण में उथल-पुथल कर सकता है। इसी कारण बरसात लाना, रोक देना, ट्रेन रोक देना आदि जो चमत्कार योगियों के जीवन में सुने जाते हैं वे कल्पित कहानियाँ नहीं हैं। किसी के पीछे ऐसे ही बातें जुड़ गई हों

तो वह बात अलग है लेकिन ये नितान्त झूठी नहीं हैं। उन्नत योग-अभ्यासियों के लिए तो ऐसे कार्य कर लेना खेल मात्र है। आप भी प्राणोपासना करो तो जान सकते हो।

हाँ, मैं यह राय नहीं दूँगा कि आप ये शक्तियाँ ही प्राप्त करो। मैं तो यह कहूँगा कि सारी शक्तियाँ जिस परमात्मा से स्पंदित होकर लीन हो जाती हैं उस आत्मा-परमात्मा में विश्रांति पाने की कला पा लो और वह वशिष्ठजी बता रहे हैं कि एक क्षण में मन मीलों दूर जाकर वापस आ जाता है तो जहाँ से गया और आया उस चिदघन चैतन्य में विश्रांति पाओ।

यह सूक्ष्म है इसलिए कठिन लग रहा है लेकिन पराया नहीं है, असंभव नहीं है, कालांतर में मिले ऐसा नहीं है। इसके लिए सदाचार चाहिए, गुरूआज्ञा शिरोधार्य करने की तत्परता चाहिए। अन्यथा थोड़ी शक्ति आते ही आदमी उलझ जायगा।

मैं तो आप लोगों के संकल्पों की बड़ी शक्ति महसूस करता हूँ। कई बार मुझे कुटिया से बाहर आने का कोई विचार नहीं होता, संकल्प नहीं होता। कुछ लोग ऐसे आ जाते है कि जिनका हृदय, श्रद्धा-भक्ति से भरा है। मुझे एकदम होता है, मैं बाहर जाऊँ। बाहर आकर उन लोगों को मुलाकात देनी पड़ती है।

कभी-कभी आप लोगों के मन में कुछ प्रश्न होते हैं, मुझे पता ही नहीं होता और उसका उत्तर अपने आप में आ जाता है। ऐसा भी आप लोगों को अनुभव होगा।

मानना पड़ेगा कि हम सबके शरीर अलग दिखते हैं, सब शरीरों में अलग-अलग मन दिखते हैं लेकिन संचालक बल एक है। सब मनों का उदगम स्थान एक ही वह चिदाकाश है। लाखों घड़ी के घटाकाश का आधार महाकाश है, लाखों तरंगों के जल का आधार सागर है ऐसे ही लाखों मन के स्पन्दनों का आधार निस्पन्द चैतन्य है। जितने अंश में आप उस चैतन्य में अनजाने में ही टिक जाते हैं उतने ही आपके संकल्प फलित हो जाते हैं। इसलिए साधन में तत्परता चाहिए। मन को, प्राण को सूक्ष्म करने में तत्परता चाहिए। सदाचार चाहिए। झूठ, कपट और दुराचार से प्राण क्षीण हो जाते हैं, कमजोर हो जाते हैं। आदमी और कोई साधना न करे, बारह साल केवल सत्य ही बोले तो फिर वह जो बोलेगा वह होने लगेगा। क्योंकि उसके प्राण में कोई विक्षेप नहीं हुआ।

छः महीना अगर कोई प्राणोपासना ठीक से करे तो उसके प्राण तालबद्ध होने लगेंगे। प्राण तालबद्ध हुए कि उसके पास योग की कुंजियाँ अपने आप प्रकट होने लगेंगी। उसके आगे प्रकृति रहस्य खोलने लगेगी। भवितव्य का पता चलने लगेगा। दूसरों के मन को पढ़ सकने की योग्यता आने लगेगी। दूसरों के मन को वह मोड़ सकता है। बहुत कुछ होता है, अगर प्राण सूक्ष्म हो जायें तो। मैं छः महीना इसलिए कहता हूँ कि तत्परतावाला भी तब तक सफल हो सकता है, बाकी तीव्र तत्परतावाला दो महीने में भी काम बना सकता है।

जीवन जीने का मजा तो बाद में आयगा। अभी तो तुमने सुख देखा ही नहीं। बहुत कुछ 'टेन्शन' देखे हैं और थोड़ा सा हर्ष देखा है, असली मजा तो देखा ही नहीं। प्राण जब तालबद्ध होंगे

उस दिन आपको जो सुख महसूस होगा और आपका जो व्यवहार होगा तब आपको लगेगा कि जीवन अभी शुरू हो रहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनूठी महिमा...... सत्संग की और सदगुरू की

एक बार कुमार कार्तिकेय भगवान सूर्यनारायण के दर्शन को गये और सूर्यनारायण की आज्ञा पाकर वहीं बैठ गये। वहाँ उन्होंने आश्चर्यकारी दृश्य देखा। उनके देखते-देखते एक दिव्य विमान आया। भगवान सूर्य खड़े हुए और विमान में से नीचे उतरे व्यक्ति का बहुत आदर सत्कार किया। उसके अंग को स्पर्श कर, सिर सूँघकर भक्तवत्सलता प्रकट की। प्रेम से बातें की और अपने पास में बैठाया। थोड़ी देर में दूसरा विमान आया। उसमें से जो व्यक्ति उतरे उनका भी इस प्रकार भलीभाँति स्वागत करके अच्छी-भली बातें की।

कार्तिक यह देखकर चकित हुए कि साक्षात् पुराण पुरूषोत्तम भगवान सूर्यनारायण इन विमानों में आये व्यक्तियों का इतना सत्कार करते हैं ! जब आवभगत की विधि पूरी हुई तब कार्तिक स्वामी ने भगवान सूर्यनारायण से पूछा कि इन विमानों से आये इन दो व्यक्तियों को आपने इतना सम्मान दिया है इसका कारण क्या है ? इनके पास ऐसा कौन सा पुण्य है जो आपके इतने स्नेहभाजन बन गये हैं ?

तब सूर्यनारायण कहते हैं- 'मुझे यम, यमी, शनि या तप्ती इतने प्रिय नहीं हैं जितने ये दो व्यक्ति प्रिय हैं।

पहले व्यक्ति जो हैं वे अयोध्या में लोगों को हरिचर्चा सुनाते थे। भगवन्नाम की कथा करने वाले व्यास थे। हरिकथा से लोगों के पाप दूर होते हैं, अज्ञान दूर होता है। मैं तो प्रकाश करता हूँ तब रात्रि का अन्धकार दूर होता है मगर ये कथाकार जब कथा करते हैं तब हृदय का अन्धकार दूर होता है। इसलिए मैं उनका इतना स्वागत करता हूँ।

दूसरा व्यक्ति जो है वह भगवद् कथा का श्रोता है, उत्तम श्रोता है। कभी भी कथा सुनकर उबा नहीं है।

श्रवण जा के समुद्र समाना.....।।

यह श्रोता ऐसा उत्तम है कि कथा सुनने के बाद इसने वक्ता की प्रदक्षिणा की और उन्हें सोना दान दिया। इसलिए उस पर मेरी प्रीति बढ़ गई। मैंने इन दोनों का स्वागत किया है।

कथा (सत्संग) एक ऐसा दिव्य प्रकाश है कि उस प्रकाश के आगे सूर्य का प्रकाश और चन्द्रमा का प्रकाश भी छोटा पड़ता है। शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं-

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरूस्तथा।

पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः।।

गंगा में स्नान करने से पाप दूर होते हैं, चंद्र की चाँदनी की शीतलता में शरीर की तपन दूर होती है और कल्पवृक्ष मिले तो दरिद्रता दूर होती है लेकिन जिसको महापुरूष मिलते हैं उसके पाप, ताप और हृदय की दरिद्रता सदा के लिए दूर हो जाती है।

इसलिए हे कार्तिक ! यह हरिचर्चा, आत्मज्ञान की चर्चा, ब्रह्मज्ञान की चर्चा करने वाला व्यास है। जो हमारे मन की बिखरती वृत्तियों को कथा द्वारा एकाग्र करने का आयोजन करे, व्यवस्था करे, हमारे चित्त की वृत्तियों को एकाकार करने की, भगवद् भाव में लाने की व्यवस्था करे उसका नाम व्यास है। आचार्य उसे कहते हैं जो हमारे मन को सात्त्विक आचरण करने का सामर्थ्य दें, हमें उस प्रयत्न में सहाय करे। गुरू वे हैं जो हमारे आत्मा की परमात्मा से मुलाकात कराने का सामर्थ्य रखते हों।"

सदगुरू मेरा शूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट।।

कोई सिर्फ व्यास होते हैं, कोई आचार्य होते हैं, कोई गुरू होते हैं मगर कोई-कोई संत ब्रह्मवेत्ता ऐसे होते हैं जो व्यास भी हों, आचार्य भी हों और सदगुरू भी हों। भगवान श्रीकृष्ण ऐसे आचार्य हैं, ऐसे व्यास हैं और ऐसे गुरू हैं कि युद्ध के मैदान में अर्जुन को आत्मज्ञान-अमृत का पान करा दिया है।

कृष्णं वन्दे जगदगुरुम् !

विवेक चाहिए, वैराग्य चाहिए, साधन चतुष्टय चाहिए, बाद में वेदान्त सुनने का अधिकार मिलता है। मगर श्रीकृष्ण ने इन सब अधिकारों की परवाह किये बिना, युद्ध के मैदान में अर्जुन को आत्मज्ञान का उपदेश देकर मोहनिद्रा से जागृत कर दिया है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि वैकुण्ठ में कोई विरले ही जाते हैं लेकिन जहाँ हरिकथा होती है, जहाँ आत्मचर्चा होती है, जहाँ कीर्तन होता है वहाँ वैकुण्ठ स्वंय खड़ा हो जाता है। गंगा में तो कोई-कोई विरले ही स्नान करने को जाते है और गंगा में बह जाने का, ठण्ड लगने का भय रहता है मगर जहाँ कथा-कीर्तन की ज्ञानगंगा बहती हो वहाँ हर कोई स्नान कर सकता है। उसमें डूबने का भय नहीं है।

हिमालय की गुफा में तो कोई विरला जोगी समाधि करके हृदय की शीतलता पाता है मगर जहाँ हरिचर्चा होती हो वहाँ तो साधक सहज में ही हृदय गुफा में आत्मशांति का अनुभव करता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूर्णावतार श्रीकृष्ण

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।

'हे अर्जुन ! मैं अमृत हूँ, मैं मृत्यु हूँ, मैं सत् हूँ और मैं असत् हूँ।'

(गीताः 9.19)

कितना दिव्य अनुभव ! कितनी आत्मनिष्ठा ! कितना सर्वात्मभाव ! सर्वत्र एकात्मदृष्टि ! जड़-चेतन में अपनी सत्ता, चेतनता और आनन्दरूपता जो विलस रही है उसक प्रत्यक्ष अनुभव !

आप दुनियाँ की मजहबी पोथियों, मत-मतांतरों, पीर-पैगम्बरों को पढ़ लीजिये, सुन लीजिये। उनमें से किसी में ऐसा कहने की हिम्मत है ? किन्तु श्रीकृष्ण भगवान के इस कथन से सर्वत्र एकात्मदृष्टि और उनके पूर्णावतार, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रेम, पूर्ण समता आदि छलकते हैं।

संसार की किसी भी परिस्थिति ने उन पर प्रभाव नहीं डाला। जेल में पैदा होने से, पूतना के विषपान कराने से, मामा कंस के जुल्मों से, मामा को मारने से, नगर छोड़कर भागने से, भिक्षा माँगते ऋषियों के आश्रम में निवास करने से, धरती पर सोने से, लोगों का और स्वयं अपने भाई का भी अविश्वास होने से, बच्चों के उद्दण्ड होने से, किसी भी कारण से श्रीकृष्ण के चेहरे पर शिकन नहीं पड़ती। उनका चित्त कभी उद्विग्न नहीं हुआ। सदा समता के साम्राज्य में। समचित्त श्रीकृष्ण का चेहरा कभी मुरझाया नहीं। किसी भी वस्तु की प्राप्ति-अप्राप्ति से, किसी भी व्यक्ति की निन्दा-स्तुति से श्रीकृष्ण की मुखप्रभा म्लान नहीं हुई।

नोदेति नास्तमेत्येषा सुखे दुःखे मुखप्रभा।

हे साधक ! इस जन्माष्टमी के प्रसंग पर तेजस्वी पूर्णावतार श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाओं से, उपदेशों से और श्रीकृष्ण की समता और साहसी आचरणों से सबक सीख, सम रह, प्रसन्न रह, शांत हो, साहसी हो, सदाचारी हो। आप धर्म में स्थिर रह, औरों को धर्म के मार्ग में लगाता रह। मुस्कराते हुए आध्यात्मिक उन्नति करता रह। औरों को सहाय करता रह। कदम आगे रख। हिम्मत रख। विजय तेरी है। सफल जीवन जीने का ढंग यही है।

जय श्रीकृष्ण ! कृष्ण कन्हैयालाल की जय....!

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ